पतन

संपादक

सर्वप्रथम देव-पुरस्कार-विजेता

श्रीदुलारेलाल

('सुधा'-संपादक)

हमारे अन्य प्रकाशन

उपन्यास—

सूर्यलोक—अँगरेज़ी के प्रसिद्ध उपन्यासकार सर राईडर हैगर्ड की अमर कृति 'एलेन क्वार्टरमैन' का हिंदी-रूपांतर। ८)

पथ-निर्देश—पं० श्रीराम शर्मा का नया राष्ट्रीय उपन्यास। ५)

भीष्म-प्रतिज्ञा—ले०, श्रीचंद्रशेखर शास्त्री। महाभारत की कथा के आधार पर रचित लघु चरितोपन्यास। २।)

चंद्रगुप्त मौर्य—हिंदी के धुरंधर विद्वान् मिश्रबंधु द्वारा रचित ऐतिहासिक उपन्यास। ३॥)

मा—हिंदी के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्रीविश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक की अमर रचना। ६)

कहानी—

सिंहगढ़-विजय—ले०, आचार्य चतुरसेन 'शास्त्री। राजपूतों के शौर्य की ऐतिहासिक वीर-गाथाएँ। २)

ग़दर के पत्र—अनु०, आचार्य चतुरसेन शास्त्री। सन् ५७ के भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम की सच्ची घटनाएँ। ३)

साहित्य-समालोचना—

विद्यापति की पदावली - टीकाकार, श्रीवसंतकुमार माथुर। विद्यापति के संपूर्ण पदों का संग्रह। १०)

हिंदी के उपन्यासकार—ले०, पं० यज्ञदत्त शर्मा। विषय नाम से ही स्पष्ट है। ३)

प्रबंध-पद्म—महाकवि 'निराला' के मर्म-पूर्ण साहित्यिनक-निबंधों का संकलन। ३)

नाटक—

पृथ्वीराज की आँखें—डॉ० रामकुमार वर्मा के एकांकी नाटकों का अपूर्व संग्रह। २)

मन्दालिनी—अनु०, श्रीजैनेंद्रकुमार। रंगमंच पर खेलने योग्य नाटक। मूल्य २)

भारती (भाषा)-भवन, दिल्ली

उपक्रमणिका

दो भयानक व्यक्ति

हवा तेज़ थी, और बादल घिर आए थे, उसी समय एक मनुष्य गंगा के किनारे, उस स्थान पर, जहाँ आज कानपुर का मैसकर घाट है, टहल रहा था। कालिमा इतनी गहरी छाई हुई थी कि हाथ को हाथ नहीं सूझता था। समय का अंदाज़ा लगाना उस समय कठिन था, पर तो भी इतना निश्चित है कि उस समय प्रायः दोपहर व्यतीत हो चुकी थी। मनुष्य नवयुवक था और वह साधारणतः ख़ूबसूरत भी था। उसका पहनावा सादा था—एक धोती और कुरता। वह बड़ी व्याकुलता के साथ किसी की प्रतीक्षा कर रहा था। उस मनुष्य के हाथ में केवल एक डंडा था। डंडे की लंबाई कोई डेढ़ फ़ीट थी, और वह काफ़ी मोटा था। वैसे तो वह लकड़ी का एक कुंदा मालूम होता था, पर इतना निश्चय है कि उस नवयुवक-जैसे शक्तिशाली व्यक्ति के हाथ में वह एक अच्छा-ख़ासा शस्त्र था। उस डंडे की मार से वह नवयुवक एक मज़बूत-से-मज़बूत साँड़ को गिरा सकता था। नवयुवक के वस्त्रों पर रक्त के कुछ दाग़ भी थे, और रक्त ताज़ा मालूम होता था; क्योंकि दाग़ लाल थे।

थोड़ी देर बाद एक दूसरा मनुष्य कानपुर की ओर से आया। वह मनुष्य भी नवयुवक मालूम होता था, और यद्यपि वह पहले नवयुवक की भाँति हृष्ट-पुष्ट न था, तो भी वह पहले नवयुवक से कहीं अधिक सुंदर था। आते ही दूसरे मनुष्य ने पहले से कहा—"रणवीर, तुम तो पहले ही से यहाँ आ पहुँचे।"

रणवीर का मुख पीला पड़ गया। फिर भी उसने अपने मनोभावों को दबाते हुए हँसकर कहा—"भाई साहब, अब न कहिएगा कि आप वक़्त के पाबंद हैं।"

प्रतापसिंह मुस्किराते-मुस्किराते रुक गया। रणवीर के वस्त्रों की ओर देखकर वह चौंक उठा। उसके मुख पर व्यथा के भाव ने आधिपत्य जमा लिया। धीरे से करुण स्वर में उसने कहा—"लड़के, कब तक तेरी रक्त की प्यास नहीं शांत होगी, तूने आज फिर किसी की हत्या की, क्या तुझे मनुष्य के प्राण लेने में कुछ भी संकोच नहीं होता?"

रणवीर प्रतापसिंह की बातें सुनकर मुसकिराया। थोड़ी देर तक मौन रहकर उसने आरंभ किया—"मनुष्य है क्या, जो उसकी हत्या करने में संकोच हो, और ख़ासकर वे व्यक्ति, जो अपने स्वार्थ के लिये दूसरों की हत्या करते हैं। जानते हो, मैंने किसे मारा है? यह एक डाकू था—डाकू। मेरा-ऐसा नहीं, एक सभ्य डाकू। यह ज़मींदार अपने ऐश्वर्य से संतुष्ट न था। तृष्णा के प्रभाव से उसने अमानुषिक कार्य करने आरंभ कर दिए थे। शराबी और व्यभिचारी होना कम दुर्गुण नहीं है, पर इसने ग़रीबों को लूटना और भूखों मारना आरंभ कर दिया था। इसका जीवन हज़ारों की मृत्यु के बराबर था, इसीलिये मैंने इसको संसार से हटा दिया। आप ही बतावें कि क्या ऐसे मनुष्य का संसार में रहना उचित है?"

रणवीर का मुख गंभीर हो गया था। वह प्रतापसिंह के मुख की ओर एकटक देख रहा था। प्रतापसिंह ने रणवीर की बातें सुनीं। उसने अपना सिर उठाया। धीरे से उसने कहा—"तुम शायद ठीक कहते हो।" इसके बाद वह मुसकिराया, पर उसकी मुसकिराहट में करुणा की एक छाया थी। उसने फिर कहा—"रणवीर, तुम्हारा कार्य भयानक है। प्रत्येक मनुष्य पापी है, अधिकांश तो पाप में इतने

संलग्न हो गए हैं कि उनका सुधरना असंभव है। तुम कहाँ तक संसार से पाप को हटाने की चेष्टा करोगे ? मुझको ही देखो।"

रणवीर ने प्रतापसिंह की बातों में यथेष्ट सार्थकता देखी। थोड़ी देर तक सोचने के पश्चात् उसने कहा—"ठीक है, मैं तुम्हें जानता हूँ। कभी-कभी इच्छा होती है कि अपने पालनेवाले को ही संसार से हटा दूँ, पर यह काम असंभव है। इसके कारण हैं—प्रथम तो तुम मेरे पिता-तुल्य हो, मैं तुम्हारा जीवन का आभारी हूँ। दूसरे, तुम मुझसे कहीं अधिक शक्तिशाली हो। तुममें न-जाने कौन-सी शक्ति है कि मैं तुम्हारे आगे आकर कायर बन जाता हूँ, तुम्हारी आज्ञा पर चलता हूँ।" रणवीर चुप हो गया।

प्रतापसिंह हँस पड़ा। उसने कहा—"रणवीर, यह न समझना कि तुम्हारे इस कथन से मुझे कुछ बुरा लगा। मैं तुम्हें जानता हूँ और तुमसे सचाई तथा निर्भीकता की आशा रखता हूँ।" फिर गंभीर होकर उसने कहा—"पर यह याद रखना कि तुम्हारा पिता तुमसे अधिक शक्तिशाली है। उसमें ऐसी शक्ति है कि वह तुम्हें भस्म कर सकती है। उसकी आँखों के आगे तुम काँपने लगोगे। तुम खड़े नहीं रह सकते।" इतना कहकर उसने अपनी आँखें रणवीर की आँखों से मिला दीं। रणवीर सचमुच काँपने लगा। जिस प्रकार अजगर की दृष्टि के आगे मनुष्य काँपने लगता है, उसी प्रकार रणवीर काँप रहा था। वह चिल्ला उठा—"भाई साहब, बस करो। अपनी आँखें हटा लो, वास्तव में वे मुझे भस्म कर देंगी।"

प्रतापसिंह ने अपनी आँखें हटा लीं। मुसकिराकर उसने कहा—"देखी मेरी शक्ति !"

रणवीर भी हँस पड़ा। क्यों हँसा ? इसका कारण नहीं दिया जा सकता। शायद प्रतापसिंह को हँसते हुए देखकर हँस पड़ा था। उसने कहा—"ठीक है। पर एक बात याद रखना भाई साहब, तुम्हारी मृत्यु

मेरे हाथों ही लिखी है। इसको तुम स्वयं ही जानते होगे। मुझे तुम्हारे-ऐसे मित्र की हत्या करने का दुःख तो थोड़ा-सा अवश्य होगा, पर तुम्हारे-ऐसे शक्तिशाली व्यक्ति पर विजयी होने का आनंद उस दुःख से कहीं अधिक होगा।" फिर उसने गंभीर होकर धीरे से कहा—"पर यह मानना पड़ेगा कि तुम एक भयानक व्यक्ति हो।"

प्रतापसिंह भी गंभीर हो गया। उसने रणवीर का हाथ पकड़कर पूछा—"अच्छा, तो क्या तुम मेरी-ऐसी शक्ति पाना चाहते हो?" इस प्रश्न से रणवीर सिहर उठा। उसके मुख से एकाएक निकल पड़ा—"नहीं" उसका मुख पीला पड़ गया था।

प्रतापसिंह को उस उत्तर की आशा न थी। उसके मुख पर आश्चर्य का भाव दौड़ गया। धीरे-धीरे उसके मुख पर घृणा-मिश्रित मुस-किराहट आई। उसने पूछा—"क्यों?"

रणवीर ने कहा—"इसलिये कि मैं शैतान का ग़ुलाम नहीं बनना चाहता।" क्रोध से प्रतापसिंह का मुख लाल हो गया। वह कह उठा—"ढोंगी कहीं के। एक हत्यारे के मुख से यह सुनकर कि वह शैतान का ग़ुलाम नहीं बनना चाहता, मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। जानते हो, तुमने कितने मनुष्यों की हत्या की है?"

"हाँ, जानता हूँ। पर मैं तुम पहले सेही कह चुका हूँ कि वे हत्याएँ पापियों को संसार से हटाने को की गई हैं। मैंने जो कुछ किया है, वह धर्म तथा न्याय के नाम पर किया है। याद रहे कि जो मैं ठीक समझता हूँ, वह ठीक है, और उसे करने में मैं कभी नहीं हिचकता।"

"वाह रे न्याय के समर्थक!" प्रतापसिंह ने व्यंग्य स्वर में उत्तर दिया। थोड़ी देर तक मौन रहने के पश्चात् उसने फिर कहा—"तुम कायर हो। इतनी हत्याएँ करने के बाद भी तुममें साहस नहीं

आया। नहीं तो तुम ढोंगी हो। पर मुझे इससे कोई मतलब नहीं। मुझे तुम्हारे-ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता नहीं। अब दूसरे प्रश्न का क्या उत्तर है?"

रणवीर कह उठा—"भाई साहब, इसमें आपका क्या स्वार्थ है, जो मुझे आप सुभद्रा से विवाह करने को रोक रहे हैं। मैंने आपसे अनेकों बार कहा है कि मैं उससे प्रेम करता हूँ। वह ग़रीब है। माता को मेरे साथ उसका विवाह करने में कोई आपत्ति नहीं।"

प्रतापसिंह कुछ देर तक मौन रहा। उसके बाद उसने सिर उठाया। उसके मुख पर कर्कश, दृढ़ता के भाव अंकित थे। उसने आरंभ किया—"लड़के, मुझे आशा थी कि मेरे इतने बार समझाने पर शायद तुम मान जाओ। पर मैं देखता हूँ कि तुम्हारी आँखें अभी तक नहीं खुलीं। तुम अंधे हो रहे हो, इसलिये मैं आवश्यक समझता हूँ कि मैं दृढ़ता धारण करूँ। जो कुछ मैं कहता हूँ, वह होगा, और अवश्य होगा। वह असंभव कहकर टाला नहीं जा सकता—समझे। मेरी इच्छा के विरुद्ध तुम कोई काम नहीं कर सकते।"

रणवीर की आँखें आप-ही-आप प्रतापसिंह की आँखों से मिल गईं। वह कुछ कहना चाहता था, पर उसके मुख से शब्द न निकले। फिर भी उसने साहस करके पूछा—"क्यों?"

प्रतापसिंह का स्वर कर्कश हो गया। उसने कहा—"तुम्हारा इतना साहस कि तुम मुझसे प्रश्न करो 'क्यों!' ठीक है, पर इसका उत्तर केवल यह है—यह मेरी इच्छा है।"

"तुम्हारी इच्छा है, तो पूरी होगी।" रणवीर इन शब्दों को कहना नहीं चाहता था, फिर भी आप-ही-आप ये शब्द उसके मुख से निकल पड़े।

प्रतापसिंह का कर्कश स्वर एकाएक मृदुल हो गया। उसके मुख पर कोमलता के भाव दिखाई पड़ने लगे। उसने धीरे से कहा—

"रणवीर, जो कुछ मैं करता हूँ, वह तुम्हारी भलाई के लिये ही करता हूँ। मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूँ। तुम्हारे पिता ने मरते समय तुम्हें मेरे हाथ में सौंप दिया था, वह दिन मुझे नहीं भूलता। तुम नहीं जानते कि मैं तुम्हें कितना चाहता हूँ। यद्यपि तुमने मेरा समय-समय पर बड़ा अनिष्ट किया है, तो भी मैंने तुम्हें सदा क्षमा किया है। और कोई होता, तो मैं उसे उसी क्षण मिट्टी में मिला देता।"

रणवीर कह उठा—"मैं जानता हूँ कि तुम्हारा मुझ पर स्नेह है।"

प्रतापसिंह ने फिर कहा—"तुम नहीं जानते कि सुभद्रा तुमसे प्रेम नहीं करती। वह तुमसे हँसती है, बोलती है, किसलिये? तुम्हारे धन के लिये। वह धन की प्यासी है—समझे! तुम संसार को नहीं जानते। और अगर जानते हो, तो मुझसे अधिक नहीं। जानते हो, मैं तुम्हारे पिता की उम्र का हूँ। यौवन लोप हो गया है, पर शक्ति द्वारा संचित कृत्रिम यौवन की मुझे कमी नहीं। मैंने संसार देखा है, और तुमसे अधिक देखा है। जो मैंने देखा है, तुम वह स्वप्न में न देखोगे। अगर तुम अपना भला चाहते हो, तो तुम सुभद्रा से बोलना छोड़ दो। अगर तुम थोड़े दिनों के लिये यहाँ से चले जाओ, तो और भी अच्छा है। अगर तुम यह न करोगे, और सुभद्रा के साथ विवाह करोगे, तो तुम्हें शक्ति और सुख को तिलांजलि देनी पड़ेगी। तुम्हारे घर में सदा कलह का निवास रहेगा। इसलिये मैं तुमसे फिर कहता हूँ कि तुम मेरा कहना मानो।"

प्रतापसिंह चुप हो गया। वह उस समय रणवीर के मुखांकित भावों को पढ़ने की कोशिश कर रहा था।

रणवीर ने अपना सिर उठाया। उसने कहा—"भाई साहब, क्षमा करना। मैं अभी तक भ्रम में था, तुमने मेरे भ्रम को दूर कर दिया। अब यहाँ रहने की इच्छा नहीं होती, बाहर जाता हूँ। मेरी ओर से आप निश्चिंत रहिएगा।"

इतना कहकर रणवीर आगे बढ़ा। उस समय बूँदें पड़ने लगी थीं। आगे चलकर रणवीर रुका।

रणवीर शक्ति का उपासक था। कहा जाता है, उसके गुरु एक सिद्ध थे। वह जो कुछ कह देते थे, वह अटल था। एक बार रणवीर से अपने गुरु का कुछ अपराध हो गया था। गुरुदेव ने क्रोध के वशीभूत होकर रणवीर को शाप दे दिया। अपराध गुरुदेव की दृष्टि में बहुत बड़ा था, शाप उनकी दृष्टि में बहुत छोटा था। अपराध यह था—एक दिन उनके गुरुदेव ने शराब मँगवाई। शराब पीकर गुरुदेव मज़े में आए, उन्होंने एक वेश्या भी बुलवाई। रणवीर मन-ही-मन मुसकिराया। उसने मन में सोचा कि गुरुदेव शराब पीकर उतावले हो गए हैं। पता नहीं, गुरुदेव को रणवीर के मन की बात कैसे मालूम हो गई, पर इतना ठीक है कि वह एकाएक क्रोधित हो गए—उन्होंने रणवीर का हाथ पकड़कर कहा—"लड़के, तू मुझ पर हँसता है! याद रखना, इस अपराध के फल-स्वरूप उस स्त्री को—जिससे तू प्रेम करेगा, तू न पा सकेगा। उसका जीवन भ्रष्ट हो जायगा।" इतना कहकर गुरुदेव हँसने लगे थे, और साथ ही उन्होंने शराब की दूसरी बोतल खोली थी। रणवीर ने उस समय शाप का महत्त्व न समझा था।

हाँ, रणवीर शक्ति का उपासक था। मैसकर घाट पर शिव का एक नष्ट मंदिर अब भी विद्यमान है। पर उसके निकटवर्ती दुर्गा का मंदिर कहाँ गया, इसका पता नहीं। इतना अवश्य है कि वहाँ एक दुर्गा का मंदिर भी था। रणवीर ने उसमें प्रवेश किया।

पूर्व की दीवार के बीचोबीच एक दुर्गा की मूर्ति थी। मूर्ति के चारों ओर फूल बिखरे हुए थे, और ताक़ पर एक दीपक टिमटिमा रहा था। रणवीर ने मूर्ति के आगे सिर झुकाया। एक ध्वनि हुई—"तुम्हें शांति मिले, अभागे नवयुवक!"

रणवीर चौंक उठा—क्या मूर्ति बोलती है? यह ध्वनि कहाँ से हुई?

क्या उसे भ्रम हुआ ? पर भ्रम तो हो नहीं सकता था, क्योंकि ध्वनि ज़ोरों के साथ हुई थी। फिर अवश्य मूर्ति ने ही रणवीर को आशीर्वाद दिया। उसने पूछा—"माता, क्या मेरी इच्छा पूर्ण होगी ?" रणवीर चुप हो गया। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। दूर पर हवा के झोंके वृक्षों से टकराकर जो कोलाहल मचाते थे, वह कभी-कभी सुनाई पड़ता था।

थोड़ी देर तक निस्तब्धता छाई रही। रणवीर उत्तर की प्रतीक्षा में खड़ा था। फिर मूर्ति से आवाज़ आई—"अभागे नवयुवक, क्या वास्तव में तुम पतिंगे की भाँति दीपक में भस्म होना चाहते हो ? क्या सोने के घड़े में भरे हुए विष को पीने में अपनी मृत्यु नहीं देखते हो ? रणवीर, जिस स्त्री से तुम प्रेम करते हो, वह तुमसे प्रेम नहीं करती। उसे तुम्हारा धन चाहिए। कैसा भ्रम है—तुम क्या अब भी नहीं समझे ?"

रणवीर का पीला मुख सफ़ेद हो गया। उसने साहस करके पूछा—"क्या वह किसी दूसरे से प्रेम करती है ?"

मूर्ति ने उत्तर दिया—"हाँ।"

रणवीर का मुख एकाएक लाल हो गया। उसने पूछा—"माता, क्या तुम उस मनुष्य का नाम, जिससे वह प्रेम करती है, बता सकती हो ?" मूर्ति हँस पड़ी। उसका अट्टहास मंदिर-भर में गूँज उठा। उसने कहा—"नाम सुनोगे ? तुम्हारी रक्त की प्यास अभी नहीं बुझी ! तुमने अपने भाइयों और मेरे पुत्रों को मारा। क्या मैं तुम्हारी रक्त की प्यास शांत करने को अपने एक और पुत्र को बलि-दान दूँगी ?" वह रुक गई। उसने फिर कहा—"फिर भी रणवीर, तुम मेरे उपासक हो, और इसीलिये मैं तुम्हें उसका नाम बतलाऊँगी। वह नाम तुम जानते हो, और उसकी तुम हत्या नहीं कर सकते। वह स्वर्ण है, समझे।" इस बार मूर्ति और भी ज़ोर से हँसी।

रणवीर निरुत्तर हो गया। वह मूर्ति के आगे अधिक खड़े रहने का साहस न कर सका। वह मंदिर के बाहर निकला। उसने सोचा, आह! मैं कितना पापी हूँ। माता मुझसे रुष्ट है, क्योंकि मैंने अपने भाइयों की हत्या की है। वह फिर कह उठा—"पर मैंने उनको मारकर क्या बुरा किया? उन्होंने कितने भोले-भाले व्यक्तियों को, कितने निरपराधों को तड़पा-तड़पाकर मारा था। उनका धन लूट लिया था। एक को मारकर सहस्रों भाइयों के प्राण नहीं बचाए। फिर क्या यह पाप है?"

थोड़ी देर तक सोचकर उसने मन-ही-मन फिर कहा—"शायद! शायद मुझे उनको दंड देने का कोई अधिकार नहीं।"

वह आगे बढ़ा। पर एकाएक वह कह उठा—"तुम ठीक कहते थे प्रतापसिंह। पर फिर भी तुम कितने नीच तथा पापी हो। तुम्हारा रक्त पीने को मेरा जी चाहता है, पर तुम मुझसे अधिक शक्तिशाली हो। देखो, कौन जीतता है!"

एक घंटे बाद प्रतापसिंह ने मंदिर में फिर प्रवेश किया। उसने पुकारा—"प्रकाश!" मूर्ति के अंदर से आवाज़ आई—"आया।" थोड़ी देर बाद मंदिर के बग़ल का द्वार खुला। प्रकाशचंद्र ने मंदिर में प्रवेश किया।

प्रतापसिंह ने पूछा—"कहो, क्या हुआ?"

प्रकाशचंद्र ने उत्तर दिया—"रणवीर आया था। काम पूरा हो गया।"

प्रतापसिंह ने अपना सिर हिलाया—"कहो, कैसी चाल खेली थी! बाधा निकल गई। अब जानते हो, क्या करना होगा?"

प्रकाश ने कहा—"नहीं, आप बतलाइए।"

प्रताप ने आरंभ किया—"तुम्हारी अलीनक़ी से जान-पहचान है न?"

प्रकाश ने उत्तर दिया—"हाँ।"

प्रताप ने फिर कहा—"तुम सुभद्रा को वज़ीर साहब द्वारा नवाब वाजिदअली शाह को दिखला दो। आह! नवाब वाजिदअली शाह-ऐसा व्यक्ति सुभद्रा-ऐसी अतुल सुंदरी स्त्री को न छोड़ेगा। उसके बाद सुभद्रा बेगम हो जायगी। समझे ?"

प्रकाश ने कहा—"हाँ समझा, पर आप यह तो बतलाइए कि किस स्त्री से आप प्रेम करते हैं, उसे आप नवाब वाजिदअली शाह की बेगम क्यों बनवाना चाहते हैं? आप स्वयं उससे विवाह क्यों नहीं कर लेते ?"

प्रताप गंभीर हो गया। "तुम ठीक कहते हो।" उसने आरंभ किया—"पर फिर भी तुम भूलते हो! अभी तुमने कहा था कि मैं सुभद्रा से प्रेम करता हूँ। यही तुमने ग़लती की। जानते हो, प्रेम क्या है? प्रेम अमृत है। प्रेम सांसारिक नहीं है, वह दैवी होता है। क्यों? तुम यह प्रश्न करोगे, इसके कारण हैं। जानते हो, संसार क्या है? संसार मद है, नशा है! संसार, यह मानना पड़ेगा, वास्तविकता से परे है। लोग कहते हैं, और बड़े-बड़े ऋषियों का मत है कि संसार असार है। फिर संसार है क्या? यदि संसार में सार नहीं है, तो यह सब जो हम रोज़ देखते और सुनते हैं, क्या है? यह सब मिथ्या है, एक कल्पना-मात्र है। संसार नशा है, और मृत्यु उस नशे की ख़ुमारी है। वास्तविकता का ज्ञान मृत्यु के बाद होता है, उसके पहले नहीं।"

प्रकाश कह उठा—"पर इससे क्या ?"

प्रताप ने प्रकाश का हाथ पकड़ लिया—"सुनो, बात मत काटो। प्रेम वास्तविकता है, अमृत है। एक और वस्तु है, लोग उसे तृष्णा कहते हैं। तृष्णा नशा है। उसमें उतावलापन रहता है—उसमें संसार का सारा सुख है। तृष्णा सांसारिक है, प्रेम दैवी है, तृष्णा नशा है, प्रेम अमृत है। पर जीवन? जीवन स्वयं ही नशा है।

इसलिये तृष्णा का ही जीवन में मुख्य स्थान हुआ। प्रेम में गंभीरता है। तृष्णा मनुष्य को पागल बना देती है। प्रेम मान-सरोवर की भाँति शांत है, तृष्णा सागर की उतावली लहरों की भाँति उच्छृंखल है। प्रेम में सदा स्थिरता रहती है, वह सदा एक-सा रहता है, तृष्णा परिवर्तनशील है—उसका लक्ष्य सदा बदला करता है, पर मनुष्य का स्वभाव भिन्न है। संसार का प्राणी होकर मनुष्य संसार के नियमों पर चलता है। मनुष्य को एक बात से सदा रुचि नहीं रहती, वह परिवर्तन चाहता है। संसार परिवर्तन-शील है, मनुष्य संसार का एक भाग है, परिवर्तन के बिना उसका जीवन असंभव है। लड़कपन के बाद जवानी, जवानी के बाद बुढ़ापा। सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख। ईश्वर ने स्वयं ही मनुष्य को परिवर्तन के नियमों से बाँध दिया है। जहाँ प्रेम है, वहाँ परिवर्तन नहीं है, परिवर्तन तृष्णा में है।" प्रताप रुक गया। प्रकाश कह उठा—"हाँ, मैं अब समझा।"

प्रताप ने प्रकाश पर अपनी आँखें गड़ा दीं। "अभी नहीं समझे? जानते हो, मनुष्य का क्या स्वभाव है? वह सदा नई वस्तु ढूँढ़ा करता है। मनुष्य प्रायः अपनी स्त्री से बाद में उतना प्रेम नहीं करता, जितना वह पहले करता है। यही इसका कारण है। जब तक मनुष्य की इच्छा-तृप्ति नहीं होती, तब तक वह एक स्त्री को चाहता है। विवाह करने के बाद उसकी इच्छा-तृप्ति हो जाती है। फिर वह और आगे बढ़ता है, समझे! दूसरी स्त्री में जो आकर्षण है, वह अपनी स्त्री में इसीलिये नहीं होता। विवाह-बंधन दैवी नहीं है। उसका निर्माण समाज ने किया है। उसका एकमात्र लक्ष्य तृष्णा को वशी-भूत करने का है। पर एक चीज़ जो प्राकृतिक है, उसका नाश नहीं हो सकता। फिर भी विवाह-बंधन बड़े काम का है। शायद वह आवश्यक है, क्योंकि वह समाज को जीवित रक्खे है।"

प्रकाश ने आश्चर्य से पूछा—"तो फिर आप विवाह क्यों नहीं करते ?"

प्रताप ने कहा—"इसके भी कारण हैं। मैं समाज के बंधनों से मुक्त रहना चाहता हूँ और रह सकता हूँ। एक मनुष्य के समाज के नियमों को तोड़ने से समाज का नाश नहीं होता। फिर यदि मैं सुभद्रा के साथ विवाह-बंधन में फँस जाऊँगा, तो उसे छोड़ना असंभव हो जायगा।" प्रकाश कह उठा—"तो फिर आप रणवीर के साथ सुभद्रा का विवाह क्यों नहीं हो लेने देते ?"

प्रतापसिंह का मुख एकाएक लाल हो गया। उसने प्रकाश का हाथ ज़ोर से पकड़कर दबा दिया। प्रकाश दर्द से चिल्ला उठा। प्रताप गरज उठा—"अगर ऐसी बात फिर कही, तो ज़बान निकाल लूँगा। जानते हो, रणवीर कौन है ? वह मेरा पुत्र है।" थोड़ी देर बाद प्रताप ने शांत होकर कहना आरंभ किया—"कितने मूर्ख हो, जो तुम आज तक मुझे न समझ सके। फिर भी शिष्य हो, इसीलिये मैंने तुम्हें क्षमा कर दिया। कारणों को सुनोगे ? सबसे पहला कारण है कि रणवीर मेरा पुत्र है। पर याद रखना कि यदि रणवीर मेरा पुत्र भी न होता, तो भी मैं उससे सुभद्रा का विवाह न होने देता। इसके कारण हैं। एक बेगम में जो सुख है, वह साधारण स्त्री में नहीं है। तृष्णा का संबंध बहिर-रूप से है। उसमें शृंगार तथा सुख-संपदा का मुख्य स्थान है। प्रेम में मनुष्य इन बातों को नहीं देखता। सौंदर्य के दो रूप हैं—अमृत और मदिरा। मुझे अमृत की आवश्यकता नहीं, मुझे मदिरा चाहिए। अमृत एक होता है, मदिरा में भेद होते हैं। महुवे के ठर्रे से मेवे की शराब, तुम्हें मानना पड़ेगा, अच्छी होती है। नशा दोनो में है, पर एक के नशे में वह सुख नहीं है, जो दूसरे के नशे में है। सुभद्रा का विवाह एक साधारण मनुष्य से करा देना असंभव है। जानते हो कि सौंदर्य सादे मनुष्य की स्त्री से शीघ्र लोप हो

गंगा-पुस्तकमाला का बानबेवाँ पुष्प

पतन

लेखक

श्रीभगवतीचरण वर्मा

[एक दिन, चित्रलेखा, टेढ़े-मेढ़े रास्ते तथा
आख़िरी दाँव आदि के रचयिता]

मिलने का पता—

भारती (भाषा)-भवन
३८१०, चर्खेवालाँ
दिल्ली

तृतीयावृत्ति] सन् १९५४ ई० [मूल्य ४)

दो शब्द

भगवतीचरण वर्मा हिंदी के ख्याति-प्राप्त कवि और उपन्यासकार हैं। 'चित्रलेखा' लिखकर तो हिंदी-उपन्यास-क्षेत्र में एक नई क्रांति ही मचा दी। "पतन" आपकी प्रारंभिक रचनाओं में से है, पर भाषा, शैली अपनी अलग मौलिक विशेषता रखती है।

पहला परिच्छेद

सन् १८५१ ई० की बात है। उन दिनों नवाब वाजिदअली शाह अवध के शासक थे। अवध उन दिनों सभ्यता में भारतवर्ष में सबसे ऊँचा था। लखनऊ की इमारतें अवध की सभ्यता के इतिहास की साक्षी हैं। लखनऊ का ऐश्वर्य अद्वितीय था।

नवाब वाजिदअली शाह दुर्भाग्य-वश अपने कुल के अंतिम शासक थे—उसके बाद अवध का सूबा भी, भारतवर्ष के अन्य प्रांतों की भाँति, अँगरेज़ों के हाथ में आ गया। नवाब साहब कमज़ोर शासक थे—इसको सब मानेंगे; पर रही उनके व्यक्तित्व की बात—इस पर लोगों के भिन्न-भिन्न मत हैं। जो लोग नवाब साहब से परिचित थे, वे उनके उपासक थे। उन लोगों की नवाब के ऊपर अटल भक्ति के कारण हैं। एक तो बड़े मनुष्य के कुछ गुणों से उसके कहीं अधिक दुर्गुण छिप जाया करते हैं, और सबसे बड़ी बात तो यह है कि ढोंगी न होना बड़ा भारी गुण होता है। नवाब साहब का अंतर और बहिर एक ही था। दूसरे, नवाब साहब सहृदय थे। शराबी और क़बाबी होना दुर्गुण तो अवश्य है; पर ऐसे मनुष्यों में एक बात देखी जाती है, वह यह कि वे सहृदय होते हैं। ऐश्वर्य

सभ्यता का एक अंग है, और साथ-साथ है सहृदयता और मिलनसारी। कट्टरता और सिद्धांतवादिता धर्म के अंग होते हैं, और धर्म का वास्तविक रूप है अंध-विश्वास, द्वेष और रक्त-पात।

नवाब साहब में अपने पूर्वजों की-सी योग्यता न थी, इतिहास और उनका पतन यह बतलाता है। किंवदंतियाँ हैं कि नवाब साहब ने अपने शासन के प्रारंभिक काल में बड़ी योग्यता प्रदर्शित की थी; पर उन किंबदंतियों में सत्यता की कितनी मात्रा है, इसका निर्णय हम नहीं कर सकते। शासन के अंतिम काल में तो यह हो गया था कि नवाब साहब को महल से कचहरी आने तक की फ़ुरसत नहीं मिलती थी। उनका महल दूसरा स्वर्ग बन गया था। रोज़ नाच तथा मुजरे होते थे।

लोगों का कहना है कि नवाब साहब श्रीकृष्णचंद्र के भक्त थे। इस बात पर एकाएक किसी को विश्वास तो नहीं होता, पर अविश्वास करने का जी भी नहीं चाहता। यह बात मानी हुई है कि उनके महल में रासलीला होती थी, और नवाब साहब गोपियों के बीच श्रीकृष्ण का पार्ट अदा करते थे।

नवाब साहब के समय में अँगरेज़ी सभ्यता का विकास नहीं हुआ था, इसीलिये बेचारे उमरख़य्याम का नाम तक भी कोई न जानता था; नहीं तो बहुत संभव है कि लोग उन्हें उमरख़य्याम का शिष्य कहने लगते। दुर्भाग्य-वश

नवाब साहब हिंदू भी न थे; नहीं तो लोग निश्चय ही उन्हें वल्लभ-संप्रदाय का अनुयायी मानने लगते। अस्तु। जो कुछ हो, नवाब साहब मज़ेदार आदमी थे। जो कुछ वह करते थे, वही उनका धर्म था। वह पीते भी थे—और ख़ूब पीते थे। यहाँ तक कि उनके दरबार में भी शराब ढल जाया करती थी।

एक दिन नवाब साहब दीवाने-ख़ास में बैठे थे। न-जाने उन्हें परियों के अखाड़े से कैसे फ़ुरसत मिल गई थी कि लोगों को उनके दर्शन मिल गए। उनके चारो ओर उनके मुसाहिब बैठे थे। शराब का हुक्म हुआ और शराब आई।

नवाब साहब ने मुस्किराते हुए पूछा—"राजा साहब, कहिए, क्या हाल-चाल है?"

राजा श्यामसिंह ने उत्तर दिया—"हुज़ूर, गुस्ताख़ी मुआफ़ हो, तो कुछ अर्ज़ करूँ।"

नवाब वाजिदअली शाह हँस पड़े। उन्होंने कहा—"राजा साहब, आप मुझे जानते हैं। हम दोनो साथ ही पढ़े-लिखे और खेले-कूदे हैं। फिर आप मुझसे ऐसी बात करते हैं।" अपना मुख फेरते हुए उन्होंने वज़ीर साहब से कहा—"वज़ीर साहब, देखिए राजा साहब को।"

अलीनक़ी ने भी हाँ में हाँ मिलाते हुए मुस्किराकर कहा—"हुज़ूर, कुछ पूछिए न! राजा साहब का दिल अभी साफ़ नहीं। ख़ुदा करे, इनकी तबीयत भी हम लोगों की तरह हो जाय।"

राजा साहब ने एक घृणा तथा तिरस्कार की दृष्टि वज़ीर के ऊपर डालते हुए अपना सिर उठाया। फिर उन्होंने नवाब साहब की ओर देखा। वह शायद नवाब साहब के मुसाहिबों तथा नौकरों का इतना साहस देखकर चकित हो गए थे। उन्होंने नवाब साहब से कहा—"हुज़ूर, सल्तनत की हालत बड़ी नाज़ुक है। लोग शहर छोड़कर भागे जा रहे हैं—जौहरियों की दूकानें तो अब शहर में खुली हुई दिखाई तक नहीं पड़तीं। आप अब तो सँभलिए, और अपना काम-काज सँभालिए। आप जानते हैं कि फ़िरंगियों ने आपसे जवाब तलब किया है। आप शायद उनकी ताक़त जानते हैं, लेकिन क्या आपको मालूम है कि आजकल वे दूसरी रियासतों को किस तरह हड़प रहे हैं?"

नवाब साहब हँस पड़े, पर उनके हँसने से पता चलता था कि उनकी हँसी के अंदर एक चिंता का भाव भी छिपा है। हँसी किसी अंश तक रूखी थी; पर इस बात को उस दरबार में ताड़नेवाले दो व्यक्ति थे—एक तो अलीनक़ी और दूसरे राजा श्यामसिंह। नवाब वाजिदअली ने कहा—"राजा साहब, अब मेरे लिये ग़ैर मुमकिन है कि मैं अदालत में बैठूँ। मैंने वज़ीर साहब-ऐसे क़ाबिल शख़्स के हाथ में मुल्क का इंतज़ाम सिपुर्द कर दिया है। हाँ, वज़ीर साहब, फ़िरंगियों ने क्या लिखा है, आपने मुझे कुछ बतलाया नहीं।"

वज़ीर साहब के पास उत्तर तैयार था। "ख़ाकसार ने हुज़ूर

को तकलीफ़ देने की कोई ज़रूरत नहीं समझी। उस परवाने में हुज़ूर की शान के ख़िलाफ़ कुछ बातें थीं, इसलिये वह परवाना हुज़ूर के आगे पेश करना हुज़ूर की बेइज़्ज़ती करना था। मैंने उसका ठीक-ठीक जवाब दे दिया है।" वज़ीर साहब ने राजा साहब की ओर एक दृष्टि डाली, उस दृष्टि में घृणा तथा रोष के भाव थे, और दूसरे ही क्षण वे शांत हो गए।

नवाब साहब राजा साहब की ओर देखकर मुस्किराए। थोड़ी देर तक वह चुप रहे, उसके बाद उन्होंने कहा—"देखा राजा साहब, मैंने कहा था न कि वज़ीर साहब-ऐसे क़ाबिल शख़्स मुल्क का इंतज़ाम ठीक तरह से करते हैं—इसमें कोई शक नहीं। फिर मैं क्यों तकलीफ़ करूँ राजा साहब! आदी हो गया हूँ आदी, इस ऐश व आराम का। अब तबीयत नहीं होती कि इन झंझटों में फिर से फँसूँ। थोड़े दिन की ज़िंदगी है, फिर आराम से क्यों न रहूँ। उसके आगे मौत है और फिर?....क्या होता है—कौन जानता है।"

नवाब साहब ने ये बातें कहीं, और विश्वास के साथ कहीं, पर कहने के समय वह वास्तविकता को भूल गए थे। उनके मुख पर धुँधलापन छाया हुआ था। चारो ओर शांति छाई हुई थी। इतने में लोगों को शराब के गिलास दिए गए।

दीवाने-ख़ास के चारो तरफ़ बड़ा कड़ा पहरा रहता था। किसी अजनबी मनुष्य का उस पहरे से निकलकर चला जाना

असंभव था। फिर भी एक मनुष्य न-जाने कैसे सिपाहियों की आँखों में धूल झोंकता हुआ दीवाने-ख़ास के पास जा पहुँचा। दरबान ने रोका। उसने पूछा—"तुम कौन हो?" मनुष्य ने मुस्किराते हुए उत्तर दिया—"मैं शैतान हूँ।" दरबान चौंक पड़ा।

उसने फिर पूछा—"तुम क्या चाहते हो?" मनुष्य ने बड़ी लापरवाही से उत्तर दिया—"मैं नवाब साहब से मिलना चाहता हूँ।" दरबान उस मनुष्य की लापरवाही और उसके बरताव से स्तंभित हो गया था। उसने कहा—"तुम नवाब साहब से नहीं मिल सकते।"

मनुष्य ने अपना सिर हिलाया। "क्या कहा? नहीं मिल सकते! पर मैं तो मिलूँगा ही—तुम मुझे रोक नहीं सकते।" इतना कहकर वह आगे बढ़ा।

दरबान ने तलवार खींच ली। वह उसकी ओर लपका, पर मनुष्य सावधान था। उसने दरबान की ओर देखा—दोनो की आँखें मिल गईं। तलवार हाथ से छूट पड़ी, मनुष्य ने दीवाने-ख़ास में प्रवेश किया।

नवाब साहब ने शराब का गिलास उठाया ही था कि वह रुक गए। लोगों में बड़ी हलचल मच गई। पास ही बैठे हुए राजा श्यामसिंह से उन्होंने पूछा—"राजा साहब, यह शोर कैसा?"

सबों की दृष्टि उस मनुष्य पर गड़ गई। वह लापरवाही

के साथ धीरे-धीरे चल रहा था। कमरे के बीचोबीच आकर वह रुका।

मनुष्य का पहनावा एक रईस के पहनावे की भाँति था, और वह लखनऊ का ही रहनेवाला मालूम होता था। चूड़ीदार पैजामे पर एक अद्धी की चपकन थी। सिर पर जरी के काम की एक दुपल्ली टोपी थी, और पैरों में कामदार जूते। उसके हाथ में सोने की मूठ की एक छड़ी थी। उसके मस्तक पर चंदन लगा हुआ था, जिससे साफ़ प्रकट होता था कि वह हिंदू है। उसके मुख पर एक विचित्र गंभीरता थी, जो लोगों में उसके प्रति श्रद्धा तथा भय उत्पन्न करने को यथेष्ट थी।

इतना होते हुए भी कोई उसे पहचानता न था। उसकी चाल-ढाल से यह मालूम होता था कि वह किसी बड़े कुल का है। फिर भी लोग उसकी ओर आश्चर्य की दृष्टि से देख रहे थे।

आगंतुक नवयुवक था, यह उसके मुख से साफ़ प्रकट होता था। पहली बार देखने से तो वह इतना सुंदर दिखाई देता था कि सारे दरबारी उसकी सुंदरता पर मुग्ध थे। उन्होंने शायद वैसा सुंदर मनुष्य कभी न देखा था। नवाब वाजिदअली शाह स्वयं ही उसकी सुंदरता की मन-ही-मन प्रशंसा कर रहे थे। उसका मुख लाल था, और उसके होंठ छोटे-छोटे थे।

पर थोड़ी देर तक उसे देखते रहने के बाद लोगों को उसकी सुंदरता में दोष दिखलाई पड़ने लगे। उसकी आँखें यद्यपि

बड़ी-बड़ी थीं, पर गढ़े के अंदर घुस चली थीं। कालिमा की एक लकीर उन सुंदर आँखों के चारा ओर भयानकता की एक परिधि खींच रही थी। यद्यपि उस मनुष्य का मुख दूर से गुलाब के फूल का-सा कोमल और ताज़ा दिखाई देता था; पर निकट से यह मालूम होने लगता था कि यौवन उस मुख को छोड़ चुका है। कभी वह इससे भी अधिक सुंदर रहा होगा, पर अब उसकी खाल में झुर्रियाँ पड़ने लगी थीं।

राजा श्यामसिंह ने उससे पूछा—"तुम कौन हो, क्या चाहते हो ?"

उस मनुष्य ने अपने चारो ओर देखा— इसके बाद वह एक खाली कुरसी पर बैठ गया। राजा श्यामसिंह के प्रश्न का उसने कोई उत्तर न दिया। बैठकर वह एकटक नवाब साहब की ओर देखने लगा।

राजा साहब क्रोध से लाल हो गए। मनुष्य ने दो गुस्ता-खियाँ कीं—एक तो बिना नवाब साहब को अभिवादन किए और बिना उनकी आज्ञा पाए हुए बैठकर जंगलियों की भाँति नवाब साहब को घूरने लगा; दूसरे, उसने उनके प्रश्न का उत्तर न देकर उनका अपमान किया। उनका हाथ स्वभावा-नुसार तलवार की मूठ पर पड़ा, तलवार झनझना उठी। उसी समय नवाब साहब ने उनका हाथ पकड़ लिया। वह कह उठे—"अरे राजा साहब, आप क्या कर रहे हैं। इस शख्स को मुआफ़ कीजिए—शायद इसने तहज़ीब की तालीम

नहीं पाई है।" फिर उन्होंने उस नवयुवक से पूछा—"क्यों भई, क्या चाहते हो ?"

इस बार उसने उत्तर दिया—"मैं हुजूर से मिलने आया था।"

उसके इस उत्तर पर नवाब साहब हँसे। राजा साहब का हाथ फिर तलवार की मूठ पर पड़ा, और सारे मुसाहिब चिल्ला उठे—"यह पागल है, इसे यहाँ से निकालो।" एक और मनुष्य अविचलित भाव से उस मनुष्य की ओर देख रहा था—वह वज़ीर साहब थे।

कुछ लोग तो उस मनुष्य की ओर बढ़े भी। थोड़ी देर तक दरबार में एक हलचल-सी मच गई। पर एकाएक निस्तब्धता छा गई। उस मनुष्य ने बढ़नेवाले लोगों की ओर देखा। उसका मुख शांत था, पर क्रोध उसकी आँखों से झलक रहा था। वे अंगारे की भाँति जल रही थीं। लोग पीछे हटे और बैठ गए। उसका उन पर इतना आतंक छा गया कि वे दूसरा क़दम न उठा सके।

थोड़ी देर तक गहरा सन्नाटा छाया रहा। उस निस्तब्धता को नवाब साहब ने भंग किया। शराब का गिलास उठाकर उन्होंने कहा—"दोस्तो, इन बेकार बातों में क्यों पड़े हो ?"

लोगों ने भी अपने आगे के गिलास उठाए, पर नवाब साहब कुछ सोचकर रुक गए। उन्होंने उस मनुष्य से पूछा—"भई, तुम कौन ज़ात हो ?"

उसने उत्तर दिया—"मैं ब्राह्मण हूँ।"

"बिरहमन हो।" नवाब साहब ने शब्द दुहराए—"तब तो शायद शराब से तुम्हें परहेज़ होगा।"

"नहीं, कोई ख़ास परहेज़ तो नहीं है। वैसे मैं कभी नहीं पीता, लेकिन हुज़ूर के हुक्म से सरताबी मुमकिन नहीं।"

नवाब साहब राजा श्यामसिंह की ओर देखकर मुस्किराए। उन्होंने कहा—"राजा साहब, इस शख़्स की तबीयत का आदमी मुझे बहुत पसंद है।"

उस मनुष्य को भी शराब का गिलास दिया गया। राजा श्यामसिंह एकाएक कह उठे—"बदमाश कहीं का!"

ये शब्द यद्यपि उन्होंने धीरे से कहे थे, पर तो भी मनुष्य ने उन्हें सुन लिया। उसने राजा साहब की ओर देखा। दोनों की आँखें मिल गईं। राजा साहब काँपने लगे। उन्होंने अपनी आँखें हटाने का प्रयत्न किया, पर वह असफल रहे। मनुष्य राजा श्यामसिंह की ओर देखकर मुस्किराया। इसके बाद उसने अपनी आँखें हटा लीं। राजा साहब कह उठे—"यह मनुष्य वास्तव में भयानक है।"

नवाब साहब ने शराब पीते हुए राजा श्यामसिंह से कहा—"राजा साहब, बहुत से क्षत्री तो शराब पीते हैं, लेकिन सख़्त अफ़सोस है कि आप ही ऐसे बदनसीब निकले कि जिन्होंने मै का लुत्फ़ न जाना, और ख़ास कर मेरे दिली दोस्त होकर।"

राजा श्यामसिंह ने हँसते हुए उत्तर दिया—"हुज़ूर तो इसका लुत्फ़ जानते हैं, यही क्या कम है। यह आपको और आपके मुसाहिबों को ही मुबारक हो।"

नवाब साहब मज़े में थे। उन्होंने आगंतुक से पूछा—"क्यों भाई, आख़िर कोई काम तो होगा ही, जो तुमने यहाँ आकर मुझसे मिलने की तकलीफ़ की।"

आगंतुक गिलास ख़तम कर चुका था। दूसरा गिलास उठाते हुए उसने कहा—"हुज़ूर, अगर यह जानना ही चाहते हैं, तो मैं कहूँगा कि मैं ज्योतिषी हूँ!"

नवाब साहब हँस पड़े—"अच्छा ज्योतिषीजी, आपका नाम क्या है?"

मनुष्य ने उत्तर दिया—"राधारमण।"

नवाब साहब ने दुहराया—"राधारमन। अच्छा भाई राधारमन, तो तुम आगे के हालात मुझे बतलाने आए हो। लेकिन आगे के हालात तो मैं ख़ुद जानता हूँ। मेरे ख़याल में तो तुम्हारी मुझे कोई ख़ास ज़रूरत नहीं है।"

राधारमण थोड़ी देर तक चुप रहा, उसके बाद उसने कहा—'हुज़ूर को शायद मुझ पर यक़ीन नहीं आता; पर मैं वह करिश्मे दिखा सकता हूँ कि हुज़ूर उनको देखकर ताज्जुब करने लगेंगे। आप समझ लीजिए कि मैं झूठ नहीं बोलता।"

नवाब साहब ने राधारमण की बातें सुनीं। उन्होंने कहा—

"भाई, बात तो तुमने बहुत बड़ी कह डाली। मुमकिन है, तुम ठीक कहते हो, लेकिन भई, लोग कहते हैं कि इसमें जन्मपत्री की ज़रूरत होती है। वह तो मेरे पास है नहीं। फिर भला क्या करोगे ?"

राधारमण ने उत्तर दिया—"इसकी कोई ज़रूरत नहीं। अगर आप आगे के हालात जानना चाहते हैं, तो अपना शराब से भरा हुआ गिलास देखें।"

नवाब साहब ने उत्सुकता-पूर्वक गिलास उठाया। उन्होंने उसमें देखा, और गिलास एकाएक उनके हाथ से छूट गया। उन्होंने देखा कि एक बड़ी भारी मीनार थी, उस पर वह खड़े थे। नीचे लोग खड़े हुए रो रहे थे, चिल्ला रहे थे। इतने में एक सेना ने आकर मीनार को घेर लिया। नवाब साहब को मीनार से उतार लिया गया। उनके स्थान पर मीनार पर एक झंडा फहरा रहा था। उनके चारो ओर अँगरेज़ सैनिक खड़े थे। उनके हाथ में एक काग़ज़ था, जिसमें लिखा हुआ था—"आज से आप अँगरेज़ों के क़ैदी हैं। अवध अँगरेज़ों का हो गया।"

नवाब साहब ने आँखें बंद कर लीं। वह धीरे से कह उठे—"ऐ ख़ुदा! क्या तुझे यही मंज़ूर है? अगर वाक़ई तुझे इस नाचीज़ को मिट्टी में मिलाना है, तो तेरी मर्ज़ी पूरी होगी।"

नवाब साहब ने आँखें खोलीं। वह काँप रहे थे। सामने राधारमण खड़ा था।

सबों ने यह देखा, और साथ-साथ वज़ीर साहब ने भी। वज़ीर साहब को सबसे अधिक चिंता हुई। उन्होंने भी राधारमण से पूछा—"ज्योतिषीजी, क्या मैं भी इसी तरह से सब कुछ जान सकता हूँ?"

राधारमण वज़ीर की ओर देखकर मुस्किराया। उसने कहा—"नहीं, मैं आपको यह दिखला सकता हूँ कि आपकी हालत आजकल क्या है। आप भी अपना गिलास उठाकर देखें।"

वज़ीर साहब ने भी गिलास उठाकर देखा। एक बड़ी भारी मीनार थी। उस पर नवाब वाजिदअली शाह खड़े थे। नीचे कुछ लोग उसी मीनार की जड़ को खोद रहे थे। उनमें एक वज़ीर साहब भी थे।

वज़ीर साहब दो क़दम पीछे हटे। उनके पैर लड़खड़ाए, और वह गिरते-गिरते बचे। सँभलकर वह अपनी कुरसी पर बैठ गए। उन्होंने राधारमण की ओर बड़े ग़ौर से देखा। राधारमण मूर्तिवत् अविचलित भाव से बैठा था।

नवाब साहब उठे। उन्होंने राधारमण से कहा—"ज्योतिषी-जी, मैं आपसे फिर मिलूँगा।" इतना कहकर उन्होंने वज़ीर साहब से कहा—"और वज़ीर साहब, आप इनको अच्छी तरह ठहराइएगा। किसी बात की इन्हें तकलीफ़ न होने पावे।"

वज़ीर साहब ने कहा—"जो मर्ज़ी हुज़ूर की।"

नवाब वाजिदअली शाह ने राजा श्यामसिंह से कहा—"राजा साहब, आप ठहरिए, आपसे तो मैं अभी बातचीत भी नहीं करने पाया। न-जाने आपने आजकल यहाँ आना-जाना क्यों छोड़ दिया।"

राजा श्यामसिंह को छोड़कर सब लोग चले गए।

सबके चले जाने के बाद थोड़ी देर तक शांति छाई रही। दोनो अपने-अपने विचारों में मग्न थे। दोनो की अवस्था एक थी—और दोनो का शरीर भी एक-सा था। अंतर केवल इतना था कि नवाब वाजिदअली शाह में कोमलता का प्रधान अंश था और राजा श्यामसिंह में कठोरता का। निस्तब्धता भंग करते हुए नवाब वाजिदअली शाह ने राजा श्यामसिंह से कहा--"राजा साहब, क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता। बड़े बुरे शगुन हो रहे हैं।"

राजा साहब ने उत्तर दिया—"हुज़ूर, मैंने आपसे अर्ज़ किया न कि राज्य का काम आप अपने हाथ में ले लें। बग़ैर इसके आपकी भलाई नहीं। आप मेरे अल्फ़ाज़ याद रखिएगा कि आपके मुसाहिब ही आपकी जड़ काट रहे हैं। आप उनके हाथों में बुरी तरह फँसे हैं। उन्होंने ऐसा जाल रचा है कि आपको बाहर की ख़बर ही नहीं मिल सकती। आप, गुस्ताख़ी मुआफ़ कीजिएगा, अंधे हो रहे हैं।"

नवाब साहब थोड़ी देर तक सोचते रहे। "ठीक है राजा साहब, आप ठीक कहते हैं; फिर भी आप ग़लती करते हैं। आपने

कहा कि मैं अंधा हो रहा हूँ, आप भूलते हैं। मैं अंधा हो चुका हूँ। कैसे यक़ीन करूँ राजा साहब? किस दिल को लेकर यक़ीन करूँ। आप नहीं जानते कि मेरा मर्ज़ लाइलाज है। मेरे लिये सुधरना ग़ैरमुमकिन है। मैं जानता हूँ राजा साहब, अभी इतनी अक़्ल है कि मैं यह समझ सकूँ कि जो कुछ मैं कर रहा हूँ, वह मेरे हक़ में किसी तरह अच्छा नहीं। मैं दिनों-दिन दोज़ख़ की तरफ़ बढ़ रहा हूँ, पर फिर भी मैं वही करता हूँ। अफ़सोस है कि आप मुझसे सुधरने के लिये इस वक़्त कह रहे हैं, जब कि मैं शैतान के हाथ बिक चुका हूँ। यह ऐशो-आराम छोड़ने की तबीयत नहीं होती—उफ़्!"

थोड़ी देर तक दोनो मौन रहे। नवाब साहब ने फिर कहना आरंभ किया—"लेकिन एक बात और है। मैं नहीं समझता कि एक इंसान कभी नमक का हक़ बुरी तरह अदा कर सकता है। रोज़ मैं रोते और बिलखते हुए लोगों की आवाज़ें सुनता हूँ, लेकिन हिम्मत नहीं होती कि उन लोगों की बातें सुनूँ। मुझे यक़ीन नहीं होता कि इंसान की इतनी बुरी हालत हो सकती है। मैं कभी ख़याल नहीं कर सकता कि इंसान इतना संगदिल हो सकता है कि वह इंसान पर ही इतनी ज़्यादतियाँ करे। इसीलिये राजा साहब! मैं अपने मुसाहिबों को अलग नहीं कर सकता। काश, मैं आज उन्हें अलग कर दूँ, तो वे भूखों मर जायँगे। मैंने उनको नाकाम बना दिया है। उनके तड़पते हुए बच्चों की आहें मुझको जला देंगी। समझे!"

राजा श्यामसिंह तालुक़ेदार थे अवश्य, पर क्षत्रिय थे। वह बोले—"हुज़ूर, कभी अपने मुसाहिबों को बुरा समझने की कोशिश भी नहीं करते।"

नवाब साहब कह उठे—"शायद, और न कोशिश ही करना चाहता हूँ।" वह फिर बोले—"नवाब साहब जानते हैं कि ऊपर ख़ुदा है, उसकी मर्ज़ी हमेशा पूरी होगी, फिर मैं यह सब क्यों करूँ। वह जो कुछ करना चाहता है, वह टल नहीं सकता। फिर मैं यह सब क्यों करूँ! शायद आप ऐसा नहीं समझते।"

राजा श्यामसिंह ने मुस्किराते हुए नवाब साहब के शब्द दुहराए—"शायद, और न समझने की कोशिश ही करना चाहता हूँ।"

नवाब साहब राजा श्यामसिंह के उत्तर पर हँस पड़े। उठते हुए उन्होंने कहा—"राजा साहब, अब आप लखनऊ में कितने दिन और ठहरेंगे?"

राजा साहब ने उत्तर दिया—"शायद कल ही चला जाऊँ।"

नवाब साहब ने कहा—"राजा साहब, अभी कुछ दिन और ठहरिए। मैं आपको इंदरसभा तो दिखा ही नहीं पाया। आप मेरे दोस्त हैं, इसीलिये आपसे उम्मेद करता हूँ कि आप मेरी यह दरख़्वास्त तो मंज़ूर करेंगे। आप फिर मिलिएगा।"

दूसरा परिच्छेद

वज़ीर साहब ने दरबार से बाहर निकलते हुए एक मनुष्य के कंधे पर हाथ रख दिया। मनुष्य वज़ीर साहब के साथ हो लिया। वज़ीर साहब ने उस मनुष्य से कुछ थोड़ी-सी बातें कीं, उसके बाद उन्होंने राधारमण से कहा—"इनका नाम मुहम्मद-याक़ूब है आप इनके साथ चले जायँ। यह आपके रहने का इंतज़ाम कर देंगे।" इतना कहकर वज़ीर साहब मुस्किराए, और एक ओर चले गए।

उस समय दोपहर हो गई थी। गर्मी के दिन थे, और लू ज़ोरों के साथ चल रही थी। फाटक पर गाड़ी खड़ी थी। दोनो गाड़ी पर सवार हुए, और गाड़ी हाँक दी गई।

मुहम्मदयाक़ूब ने राधारमण की ओर देखा। एक निर्जीव मनुष्य की भाँति वह अपनी जगह पर बैठा था, शायद वह सो रहा था। मुहम्मदयाक़ूब ने राधारमण के मुखांकित भावों को ग़ौर से पढ़ना आरंभ कर दिया। राधारमण की आँखें खुली थीं, पर पुतलियाँ स्थिर थीं। उसका मुख झुका हुआ था, और उस पर पीलापन छाया हुआ था। मुहम्मदयाक़ूब मन-ही-मन कह उठे—"अजीब शख़्स है।"

दोनो मौन थे, और दोनो अपने-अपने विचारों में मग्न थे।

मुहम्मदयाक़ूब ने कहा—"ज्योतिषीजी, आप कहाँ के रहने-वाले हैं?"

राधारमण ने इस प्रश्न का कोई उत्तर न दिया, मानो उसने मुहम्मदयाक़ूब के प्रश्न को सुना ही नहीं।

मुहम्मदयाक़ूब शायद एक अपरिचित व्यक्ति से, जिसका समाज में कोई विशेष स्थान नहीं है, इस उपेक्षा के आदी नहीं थे। क्रोध से उनका मुख लाल हो गया, और वह अपने ओठ काटने लगे। पर उन्होंने फिर कुछ न कहा।

गाड़ी एक बड़े भवन के पास जाकर रुकी। कोचवान ने आकर दरवाज़ा खोला। राधारमण चौंक उठा, उसने एक जँभाई ली। मुहम्मदयाक़ूब से उसने मुस्किराते हुए कहा—"मुआफ़ कीजिएगा, मैं सो गया था।" इस बार मुहम्मदयाक़ूब भी मौन रहे।

मुहम्मदयाक़ूब गाड़ी से उतरे, राधारमण भी उनके पीछे उतरा। उस भवन की ओर देखकर आश्चर्य से राधारमण ने मुहम्मदयाक़ूब से कहा—"क्या आपका दौलतख़ाना यही है?"

मुहम्मदयाक़ूब ने व्यंग्य-स्वर में उत्तर दिया—जी हाँ, ख़ाकसार का ग़रीबख़ाना यही है।"

दोनो फाटक की ओर बढ़े। फाटक पर दो दरबान पहरा दे रहे थे। मुहम्मदयाक़ूब ने इशारा किया, दोनो आगे बढ़े।

"इस बदज़ात को क़ैद कर लो, और जल्लाद के हाथ सुपुर्द

कर दो।" मुहम्मदयाक़ूब गरज उठे। दोनो दरबान और आगे बढ़े।

राधारमण को मुहम्मदयाक़ूब के इस व्यवहार पर थोड़ा-सा आश्चर्य हुआ। उसने पहले मुहम्मदयाक़ूब की ओर देखा और फिर दोनो दरवानों की ओर। फिर भी वह अविचलित भाव से खड़ा रहा। उसने केवल एक काम किया। उसने अपने वे नेत्र, जो उस समय अंगारों की भाँति जल रहे थे, उन दोनो दरवानों पर गड़ा दिए। दोनो व्यक्ति एकाएक रुक गए। रुककर वे पीछे हटे। मुहम्मदयाक़ूब नौकरों से हुक्मउदूली देखने के आदी नहीं थे, उनका पारा चढ़ गया। वह इस बार कड़ककर बोले—"बदज़ातो, नमकहरामो! देखते क्या हो, इस काफ़िर का सर यहीं धड़ से अलग कर दो।" दोनो व्यक्ति काँप रहे थे। उन्होंने फिर बढ़ने का प्रयत्न किया, पर पैर उठते-उठते न उठे। मुहम्मदयाक़ूब को इस बार उन मनुष्यों के मुख पर बेबसी के भाव दिखाई दिए। उन्हें आश्चर्य हुआ। घूमकर उन्होंने राधारमण के मुख की ओर देखा, देखते ही वह काँप उठे।

राधारमण बिलकुल शांत था। मुहम्मदयाक़ूब को अपनी ओर इस प्रकार देखते हुए देखकर वह हँस पड़ा। उसने कहा—"जनाब, जो कुछ आप करना चाहते हों, वह कर सकते हैं। आप शायद मुझे नहीं जानते। आप शैतान के गुलाम हैं, मैं उसका छोटा भाई हूँ। आपका मुझसे

पेश पाना ग़ैरमुमकिन है। अगर मैं चाहूँ, तो आपके ये दोनो नौकर आपका ही काम तमाम कर दें। अगर मैं चाहूँ, तो आपको और आपके सब मददगारों को एक पल में मिट्टी में मिला दूँ। समझते हैं? शायद नहीं।" इतना कहकर राधारमण ने मुहम्मदयाक़ूब की ओर अपनी दृष्टि फेर दी। मुहम्मदयाक़ूब वास्तव में काँपने लगे।

वह कह उठे—"भाई, मुआफ़ करना, मैं तुम्हें और तुम्हारी ताक़त को नहीं जानता था। इस ताक़त का मुझे ख्वाब में भी खयाल न था। वाक़ई तुम मुझसे कहीं ताक़तवर हो।" राधारमण ने अपनी आँखें हटा लीं।

मुहम्मदयाक़ूब अंदर चले, राधारमण भी पीछे हो लिया। आँगन के बाद दालान और दालान के बाद आँगन। राधा-रमण के लिये यह ऐश्वर्य नया न था, पर फिर भी उसे आश्चर्य हुआ। आश्चर्य उसे इसलिये हुआ कि मुहम्मदयाक़ूब ऐसा साधारण व्यक्ति भी इतना अमीर हो सकता है। वह मन-ही-मन नवाव वाजिदअली शाह के ऐश्वर्य की कल्पना कर रहा था।

मुहम्मदयाक़ूब एक दालान में पहुँचे। पहली दालानों की भाँति उसमें अधिक द्वार न थे—एक, जिधर से वह आया था, और दूसरा, जिधर वह जा रहा था। राधारमण जिधर से आया था, उस ओर तो कमरे इत्यादि थे; पर जिस ओर वह जा रहा था, उधर सामने दूर तक फुलवारी लगी थी।

मुहम्मदयाक़ूब रुक गए। उन्होंने कहा—"यही कमरा जनाब के लिये ठीक होगा।"

राधारमण ने कमरे के चारो ओर देखा, उसने फिर कहा—"लेकिन इसमें दरवाज़े वग़ैरा तो कुछ नहीं हैं?"

मुहम्मदयाक़ूब उस समय कमरे के बाहर पहुँच गए थे। मुस्किराते हुए सिर हिलाकर कहा—"हाँ ठीक। देखिए, उनका भी इंतज़ाम किए देता हूँ। आप ज़रा ठहरकर आराम करें।"

इतना कहकर मुहम्मदयाक़ूब चले गए। राधारमण फ़र्श पर बैठ गया।

एकाएक झनझनाहट की एक आवाज़ हुई, और पल-भर में सीख़चों से जड़ी हुई चौखटें द्वारों के ऊपर से गिरीं। द्वार बंद हो गए। शेर पिंजड़े में बंद कर दिया गया। राधारमण चिल्ला उठा—"बदमाश कहीं का!" और उसे हँसी के एक ठहाके में उत्तर मिला।

वह दोनो द्वारों की ओर बढ़ा, पर कहीं भी रास्ता न था। क्रोध से वह दाँत पीसने लगा, पर थोड़ी देर में शांत हो गया। उसके बाद वह उस दालान को देखने लगा।

कमरा साधारण रीति से सजा था। उसमें एक ग़लीचा बिछा था, जो फ़ारस का बना था। सामने एक बड़ा-सा शीशा और शीशे के पास कंघा, तेल की बोतल और इत्रदान रक्खा था। कमरे के चारो ओर फ़र्श पर मुलायम तकिया रक्खी हुई थी। एक ओर एक पीकदान तथा हुक़्क़ा भी रक्खा था।

दीवार पर तस्वीरें लगी थीं, और तस्वीरें सुंदर थीं। उन तस्वीरों को देखकर एक भला आदमी तो अवश्य अपने नेत्र बंद कर लेता—अश्लीलता की उनमें हद हो गई थी। फिर भी वे तस्वीरें राधारमण को बड़ी अच्छी लगीं।

दीवार पर ताक़ थे, और उनमें काँच के सुंदर प्याले रक्खे हुए थे। कोने की ओर एक ताक़ और था। राधारमण की दृष्टि उस ताक़ पर ठहर गई। एक काँच की सुराही, जिस पर सोने का काम बना था, रक्खी थी, और उसमें लाल-लाल कोई तरल पदार्थ था। राधारमण ने सुराही नीचे उतार ली, और साथ में एक प्याला भी।

उसने उस तरल पदार्थ को हाथ में लेकर चीखा, वह मुस्किरा पड़ा। उसने प्याले में भर कर उसे पीना आरंभ कर दिया। एक प्याले के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा। फिर भी उसकी पिपासा शांत न हुई। गर्मी ज़ोरों के साथ पड़ रही थी, और उस पर भी वह विना पानी मिलाए हुए शराब पीता चला जा रहा था। यहाँ तक कि उसने सुराही साफ़ कर दी। वह कह उठा—"बदमाश कहीं का! जानता नहीं कि कैसे भयानक मनुष्य से पाला पड़ा है। क्या मैं यहाँ से निकल नहीं सकता?" वह हँस पड़ा। उसके बाद गंभीर होकर उसने कहा—"निकलकर मैं तेरे कुल का नाश कर दूँगा।" इसके बाद वह शांत हो गया।

वह बैठ गया। उसने सोने का प्रयत्न किया; पर गर्मी

इतनी अधिक थी कि उसे नींद न आई। उसके बाद उसने कमरे के चक्कर काटना आरंभ कर दिए। दोपहर बीती और शाम आई। थककर वह फिर लेट रहा। वह क्षुधित था, भूख से वह छटपटा रहा था। पर वह कर क्या सकता था?

जिस दालान में राधारमण क़ैद था, उसे भूतों की दालान कहते थे। उस दालान में कभी कोई न जाता था। अक्सर उस मकान के नौकरों ने उस दालान से आती हुई तथा वेदना से भरी हुई आहों की आवाज़ें सुनी थीं।

किसी भी नौकर को उस दालान की ओर जाने का साहस न होता था। एक बार मुनीर घूमते-घूमते उस दालान के पास पहुँचा। मुनीर को नौकर हुए अधिक दिन नहीं हुए थे, और मुनीर साहसी भी था। पर वहाँ के दृश्य को देखकर वह सहम गया। एक मनुष्य, जिसके दुर्बलता से केवल हाड़-मांस ही रह गए थे, वहाँ बैठा हुआ कुछ सोच रहा था। मुनीर उसे भूत समझकर चिल्ला उठा। वह वहाँ से भागा, उसे उसी समय ज्वर हो आया। फिर मुनीर ने कभी उस कोठरी के पास जाने का साहस न किया।

उस दालान से मिला हुआ एक बाग़ था। पर वह दालान जिस स्थान पर थी, उसके आस-पास का बाग़ उजड़ा हुआ पड़ा था। बाग़ ज़नाना था। बड़ी बेगम साहबा, मुहम्मद-याक़ूब की स्त्री, को फूलों से बड़ा प्यार था, और उन्होंने मुहम्मदयाक़ूब से कहकर वह बाग़ बनवाया था। वह बाग़

भवन के पिछले भाग में था। बाग़ के तीन ओर तो आठ फ़ीट ऊँची एक चहारदीवारी थी, और चौथे ओर वह विशाल भवन था।

गुलनार—मुहम्मद याक़ूब की पुत्री—को भी बाग़ से बड़ा शौक़ था। बड़ी होने पर गुलनार अपना अधिक समय बाग़ में व्यतीत करती थी। गुलनार ने वह कोठरी देखी थी—केवल कौतूहल-वश—और उसने वहाँ कुछ भी न देखा। उसने मुहम्मदयाक़ूब से एक दिन पूछा—"अब्बा, क्या उस दालान में भूत रहते हैं ?" मुहम्मदयाक़ूब ने मुस्किराकर उत्तर दिया—"हाँ, कभी-कभी।" लेकिन गुलनार में साहस यथेष्ट था। वह भूत देखना चाहती थी, और इसलिये वह उस दालान के दर्शन प्रायः किया करती थी, पर प्रत्येक बार वह निराश हुई।

उस दिन दुर्भाग्य-वश या राधारमण के सौभाग्य-वश गुल-नार घूमते-घूमते उस दालान के पास पहुँची। एकाएक वह ठिठक उठी। उसने उस दालान के द्वार कभी सीख़चों से बंद न देखे थे। वह ठिठक गई। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ, कौतू-हल-वश वह आगे बढ़ी। दालान के पास जाकर वह रुकी। उसने भीतर झाँका और वह चौंक उठी। उसने देखा कि कमरे के बीचोबीच एक मनुष्य लेटा हुआ है। उसने वहाँ से लौटने के लिये पैर उठाए ही थे कि राधारमण ने उसे देख लिया। गुलनार अब न लौट सकी।

गुलनार सुंदरी थी। उसका मुख चंद्रमा की भाँति निर्मल था, शायद उससे अधिक था। उसके गाल कमल के रंग की भाँति लाल थे, और उन पर यौवन नाच रहा था। उसके दाँत मोती की भाँति चमक रहे थे, पर थे उनसे भी अधिक श्वेत। उसके ओंठ छोटे-छोटे थे, और पान की लाली उनकी प्राकृतिक लालिमा को द्विगुणित कर रही थी। उसकी आँखें सतृष्ण मृगी की आँखों की भाँति बड़ी-बड़ी तथा सुंदर थीं। पर उनमें एक बात अधिक थी कि उनमें अमृत की सफ़ेदी का मुख्य स्थान था। उसकी पुतलियाँ काजल की भाँति काली थीं; पर उनमें विशेषता यह थी कि मनुष्य उनमें अपना प्रतिबिंब देख सकता था। उसकी आँखों में एक विशेष प्रकार का आकर्षण था।

जिस समय वह चलती थी, उस समय उसके पैर इस शान से उठते तथा गिरते थे, मानो वह उनके प्रहार से पृथ्वी को चूर-चूर कर देगी। मतवाले-से-मतवाले हाथी उसकी मतवाली चाल पर शर्मा जाते थे। जिस समय वह बोलती थी, उस समय मालूम होता था कि मानो कोयल पंचम स्वर में कूक रही है, और उस कूक का साथ वीणा की झंकार दे रही है; जिस समय वह हँसती थी, उस समय मालूम होता था कि मानो फूल झर रहे हैं। उसकी हँसी की ध्वनि वायु-मंडल में एक विशेष प्रकार का कंपन उत्पन्न कर देती थी। जिस समय वह क्रोधित होती थी, उस समय मालूम होता

था कि मानो ज्वालामुखी पर्वत आग उगल रहा है, अथवा सर्पिणी फुफकार रही है। रही रोने की बात, तो शायद वह, जब से उसने होश सँभाला, कभी न रोई थी। ऐसी भाग्य-वती तथा सुंदरी युवतियाँ रोने के लिये नहीं बनाई जातीं।

गुलनार की अवस्था प्राय: सोलह वर्ष की थी। वह पूरी युवती हो गई थी, यह सब मानेंगे। वैसी सुंदरी युवती का मिलना यदि असंभव न था, तो कठिन अवश्य था। उसे देखकर मनुष्य की आँखें एक क्षण के लिये अवश्य झेंप जातीं। उसके यौवन में मतवालापन था। उसकी आँखों के अमृत में नशा था। वह चंचल और शोख़ थी। गुलनार में परमेश्वर ने सुंदरता की हद कर दी थी।

राधारमण ने गुलनार को देखा। देखकर उसने एक क्षण के लिये अपनी आँखें बंद कर लीं। जिस समय उसने अपने भयानक नेत्र खोले, उस समय उनमें अपूर्व शक्ति आ गई थी। एक बात उसकी दृष्टि में और थी, बहुत संभव है कि अधिक शराब पीने के कारण ऐसा हुआ हो—उस दृष्टि में विलासिता का मुख्य स्थान था। उसने धीरे से कहा—"आप कौन हैं, और यहाँ कैसे घूम रही हैं?"

गुलनार एक अपरिचित व्यक्ति के सामने इस प्रकार खड़ी होने पर स्वयं आश्चर्य करती थी, तो भी वह वहाँ से हट न सकी। जिस समय वह अपने पैर उठाना चाहती थी उसे अनुभव होता था कि मानो उसके पैर वहाँ

पर बँध गए थे। उसके पैरों को उसका हृदय बाँधे हुए था, और उसका हृदय उसके लाख कोशिश करने पर भी अपने आप उस मनुष्य की ओर खिंचा जाता था। आज तक मुहम्मदयाक़ूब की कन्या ने कभी एकांत में एक अपरिचित व्यक्ति से बातचीत न की थी। यहाँ तक कि उसको उसके संबंधियों को छोड़कर किसी ने देखा भी न था। वह मौन खड़ी थी। उससे प्रश्न हुआ था। प्रश्न का उत्तर उसने न दिया था। इस बार वह अपने को रोकने में समर्थ हुई थी या यह स्त्री की स्वाभाविक भीरुता थी, जो उसने प्रश्न का उत्तर नहीं दिया, यह तो हम ठीक तौर से नहीं कह सकते; पर इतना अवश्य है कि उसके नेत्र राधारमण के नेत्रों से बातें कर रहे थे। राधारमण ने फिर कहा—"मुआफ़ करना ऐ परी! अगर मैं तुम्हारा नाम पूछूँ?"

इस बार गुलनार को अपनी इच्छा के प्रतिकूल बोलना पड़ा। मुस्किराकर उसने उत्तर दिया—"बंदी को लोग गुलनार कहते हैं।"

राधारमण ने कहा—"आपका नाम गुलनार है? ठीक, लेकिन अगर यह आपका गुलाम आपको प्यारी कहे, तो आपको बुरा तो न लगेगा?" इतना कहकर राधारमण भी मुस्किराया।

गुलनार ने कोई उत्तर न दिया। उसका मुख लाल हो गया। उसने अपना सिर झुका लिया।

राधारमण कह उठा—"आप नाराज़ क्यों होती हैं?"

अगर मुझसे कोई गुस्ताखी हो गई हो, तो मुझे मुआफ़ कीजिए ।"

गुलनार कह उठी—नहीं-नहीं, मैं नाराज़ नहीं होती, लेकिन मैं यह सोच रही थी कि मुझे कोई दूसरा शख्स इस नाम से पुकारता, तो वह ज़मीन में गड़वाकर कुत्तों से नुचवा डाला गया होता। लेकिन न-जाने क्यों आपके सामने मैं बेबस हो गई हूँ।"

राधारमण हँसने लगा—"वाक़ई तुम मुझसे प्यार करती हो। अच्छा गुलनार, क्या तुम थोड़ा-सा दूध ला सकती हो ?"

गुलनार का उतावलापन और गर्व उस मनुष्य के सामने बर्फ़ की भाँति गल गया। उसको एक अपरिचित व्यक्ति ने "प्यारी" शब्द से संबोधित किया, और बुरा मानने के स्थान पर वह शब्द उसे अच्छा लगा। "हाँ, क्यों नहीं।" इतना कहकर गुलनार चलने लगी।

राधारमण ने गुलनार को रोककर कहा—"ज़रा ठहरो प्यारी गुलनार! जानती हो, एक बात है? शायद नहीं, लेकिन उस बात का जानना तुम्हें ज़रूरी है। मैं मुहम्मदयाक़ूब का क़ैदी हूँ। वह आपके कौन हैं ?"

गुलनार मुस्किराई। उसने कहा—"वह मेरे वालिद हैं, लेकिन मैं अपने वालिद के क़ैदी की गुलाम हूँ। यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ।"

गुलनार युवती थी, पर उसका विवाह अभी तक न हुआ

था। शायद आज के पहले वह प्रेम शब्द को भी न जानती थी। गुलनार, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं और जैसी कि बड़े घर की लड़कियाँ प्रायः हुआ करती हैं, शोख़ थी। गुलनार पढ़ी-लिखी थी; पर उसका अध्ययन जैसा कि प्रायः इन अमीर लड़कियों का हुआ करता है, वैसा ही था। उसे उर्दू की कविताएँ बड़ी पसंद थीं। इश्क़-संबंधी कविताओं से उसे बड़ा प्रेम था, और जैसी कि उर्दू की कविताएँ होती हैं, आशिक़ी तथा माशूक़ी के भावों से वह परिचित थी। वास्तविकता का ज्ञान उसे न था; पर उसकी अवस्था ऐसी थी कि वह वास्तविकता को समझना चाहती थी। लड़कपन में ये भाव उसे मज़ाक़ मालूम होते थे; पर अब यद्यपि उसे कोई भी निजी अनुभव न था, ये भाव उसके हृदय में एक प्रकार की सनसनी उत्पन्न कर देते थे। वह उन बातों पर आश्चर्य करती थी, पर एकाएक वह उन्हें हँसी में न उड़ा सकती थी। 'इश्क़' शब्द के वास्तविक महत्त्व से तो वह परिचित न थी, पर वह उस शब्द में एक प्रकार की गंभीरता का अनुभव करती थी। राधारमण से साक्षात् उसके जीवन में एक नया प्रश्न था।

गुलनार वहाँ से चली गई। उस समय उसने उन समस्याओं पर कुछ भी विचार न किया। शायद वह विचार करने से हिचकती थी। एक अंधे व्यक्ति की भाँति वह उस मार्ग पर चल रही थी, थोड़ा-सा भी तर्क-वितर्क उसके

अगाध आनंद में बाधा डालनेवाला हो जाता। उसने एक शीशे के गिलास में राधारमण को दूध दिया। राधारमण ने दूध पीकर उसे धन्यवाद दिया। गुलनार चलने लगी।

राधारमण ने धीरे से कहा—"कहाँ जाती हो प्यारी गुलनार! आओ, थोड़ी देर साथ रहें और बातें करें। तबीयत नहीं होती कि तुम एक पल भी आँखों के आगे से दूर रहो।"

गुलनार रुक गई। उस समय रात्रि हो रही थी। दीपक एक के बाद एक जलने लगे। उसी समय राधारमण ने कहा—"प्यारी गुलनार, क्या तुम मुझे यहाँ से छुड़ा सकती हो?"

गुलनार चौंक उठी। उसका मुख पीला पड़ गया। उसने बड़े करुण शब्द में कहा—"आह! मैं नहीं जानती कि वे दरवाज़े किस तरह खोले जाते हैं!"

राधारमण को एकाएक गुलनार की बातों पर विश्वास न हुआ। अँधेरे में वह गुलनार के मुख पर अंकित वेदना तथा बेबसी के भावों को न देख सका। उसने फिर कहा—"लेकिन गुलनार, क्या तुम मुझसे मुहब्बत नहीं करती हो?"

गुलनार की आँखों में आँसू भर आए। उसके प्रेम पर अविश्वास उसे असह्य था। उसने बड़े करुण स्वर में कहा—"क्या कहते हो, मैं तुमसे मुहब्बत नहीं करती! मैं तुमसे पहले ही कह चुकी हूँ कि मैं तुम्हारी गुलाम हूँ। तुम्हें छुड़ाने की कोशिश करूँगी। क्या तुम मुझ पर यक़ीन नहीं करते?"

राधारमण को अपनी भूल मालूम हो गई। उसने धीरे से कहा—"प्यारी गुलनार, मुझे मुआफ़ करना, अगर मैंने तुम-से कोई बेजा बात कह दी हो।"

थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे। आकाश की ओर देखते हुए गुलनार ने कहा—"रात हो गई है। अगर अब न जाऊँगी, तो लोग मुझे ढूँढ़ते हुए यहाँ आ पहुँचेंगे, और फिर जानते ही हो कि यह हम दोनों के हक़ में बुरा होगा।"

"हा !" राधारमण ने एक ठंडी श्वास ली।

इसी समय एक ओर से एक आवाज़ आई—"अरी गुल-नार, तेरे अब्बा तुझे बुलाते हैं। तू बोलती क्यों नहीं ? इतनी देर हो गई, अब भी बाग़ में घूम रही है। आती क्यों नहीं ?"

आवाज़ गुलनार की धाय की थी। उसने धीरे से राधा-रमण से कहा—"देखा न, मैंने ठीक कहा था। मुआफ़ करना, तुम्हारे पास मैं ज्यादा देर तक खड़ी न रह सकी। कल फिर मिलूँगी।"

इतना कहकर गुलनार वहाँ से दबे पैरों भागी।

मुहम्मदयाक़ूब घर-भर में अपनी लड़की को सबसे अधिक चाहते थे। घर आकर वह गुलनार से कुछ देर तो अवश्य बातें करते थे। गुलनार की हँसी और उसकी चंचलता थोड़ी देर के लिये मुहम्मदयाक़ूब को इस सांसारिक नरक से निकाल लेती थी। मुहम्मदयाक़ूब का गुलनार से इतना प्रेम था कि वह विना उसके खाना तक न खाते थे। गुलनार आकर अपने

वालिद से लिपट गई। मुहम्मदयाक़ूब ने अपनी लड़की की ओर देखकर पूछा—"बेटी, तेरा मुँह आज पीला क्यों है?"

गुलनार हँस पड़ी। पर वह हँसी रूखी थी। उसने कहा—"अब्बाजान, आज दोपहर से मेरे सिर में दर्द है।"

मुहम्मदयाक़ूब चिंतित हो गए। उन्होंने आवाज़ दी—"अरे, कोई है। ज़रा हकीम को तो बुलाना। आज मेरी प्यारी लड़की की तबीयत ख़राब है।"

गुलनार ने कहा—"अब्बाजान, इस वक्त हकीम की कोई ज़रूरत नहीं। बाग़ में टहलने से काफ़ी सेहत मिली है। दर्द धीरे-धीरे कम हो रहा है।"

मुहम्मदयाक़ूब ने अपनी स्त्री से कहा—"गुलनार अब काफ़ी सयानी हो गई है। अब इसकी शादी की फ़िक्र करनी चाहिए।"

बड़ी बेगम साहबा ने अपने पतिदेव की ओर एक बड़ा अर्थ-पूर्ण कटाक्ष किया। गुलनार वहाँ से चली गई। बड़ी बेगम साहबा ने कमरे के चारो ओर देखकर धीरे से कहा—"फ़िक्र काहे की। गुलनार की शादी नवाब साहब से क्यों नहीं करा देते? मेरी लड़की किस नवाबज़ादी से कम है। नवाब साहब की बेगमें तो इसके पैर की धोवन भी नहीं हैं।"

मुहम्मदयाक़ूब श्रीमती का प्रस्ताव सुनकर काँप उठे। लड़-खड़ाते हुए स्वर में उन्होंने कहा—"बस, अब इस बात को

फिर कभी न दुहराना। मैं इस लख्ते-जिगर को क़ुरबान नहीं कर सकता। मैंने बहुत-से पाप किए हैं, लेकिन इस पाप को मुझसे न कराओ। उस गिरे हुए नाकाम शख़्स के गले में अपनी लड़की बाँधने को तुम मुझे मजबूर न करो।"

थोड़ी देर तक मौन रहकर मुहम्मदयाक़ूब ने फिर कहा—"तुम नहीं जानतीं कि नवाब के साथ शादी कराना गुलनार के हक़ में बुरा होगा। अलीनक़ी वग़ैरह ने नवाब साहब को इतना नीचे गिरा दिया है कि वह ज्यादा टिक नहीं सकते। उसके बाद अलीनक़ी नवाब हो जायँगे और मैं वज़ीर।"

बड़ी बेगम बोल उठीं—"वाक़ई क्या ऐसी बात है ?" मुहम्मदयाक़ूब थोड़ी देर तक चुप रहकर बोले—"मेरा ऐसा ही ख़याल है, लेकिन आगे के हालात ख़ुदा जानता है। कभी-कभी यक़ीन की जगह शक होने लगता है। मालूम नहीं, क्यों। हाँ, एक बात तो कहना भूल ही गया था। आज दरबार में एक ज्योतिषी आया था। उसने नवाब साहब को न-जाने क्या बतलाया कि वह काँपने लगे, और उनका चेहरा पीला पड़ गया। सबसे ताज्जुब की बात तो यह है कि उसने अलीनक़ी के शराब के प्याले में उनको उनकी सब करतूतें दिखला दीं। मैं ख़याल करता हूँ कि उसने हम लोगों की चालबाज़ी नवाब साहब पर ज़ाहिर कर दी है। नवाब साहब ने उससे फिर मिलने को कहा है। उस वक़्त वह शायद ज्यादा बतलाए। जानती हो कि यह

हमारे हक़ में बुरा होगा। इसलिये मैं उसे नवाब साहब से मिलने देना नहीं चाहता हूँ।"

मुहम्मदयाक़ूब की स्त्री मौन थी। कुछ सोचकर मुहम्मदयाक़ूब ने फिर कहा—"उस आदमी के सामने होकर उससे जीतना ग़ैर मुमकिन है। उसकी आँखों में न-जाने कहाँ की ताक़त है।"

बड़ी बेगम साहबा ने कहा—"तो आख़िर करोगे क्या? वह तो बड़ा ख़तरनाक शख़्स है।"

मुहम्मदयाक़ूब ने कहा—"कुछ इंतज़ाम कर दिया है। उसको मैंने भूतोंवाली कोठरी में क़ैद कर दिया है। यह ख़याल रहे कि कोई उस कोठरी के पास न जाय, नहीं तो वह उसको अपना ग़ुलाम बनाकर अपना काम निकाल लेगा। ऐसे शख़्स को तो भूखों ही मारा जा सकता है।" इतना कहकर मुहम्मदयाक़ूब चले गए।

तीसरा परिच्छेद

रणवीर यदि हत्यारा था, तो सहृदय भी था। वह यदि घृणा करता था, तो प्रेम भी करता था। यदि वह मारना जानता था, तो वह मरना भी जानता था—दूसरे शब्दों में वह पूरा मनुष्य था।

प्रेम और घृणा—मनुष्य के जीवन के ये प्रधान अंग हैं। प्रेम की परिभाषाएँ दार्शनिकों ने भिन्न-भिन्न की हैं, पर तो भी प्रेम के वास्तविक रूप को जानने में बहुत कम लोग सफल हुए हैं। और, रही घृणा की बात, उसको समझने में तो कोई भी सफल नहीं हुआ। लोग प्रेम को न-जाने क्या समझे हैं—कभी-कभी तो प्रेम शब्द कानों को कटु जँचने लगता है। 'प्रेम' शब्द आजकल इतना प्रचलित हो गया है कि वह व्यंग्य हो गया है।

प्रेम क्या है, यह बड़ा टेढ़ा प्रश्न है, और साथ-साथ बड़ा सरल भी। मनुष्य में एक पसंद करने की प्रकृति होती है। प्रत्येक मनुष्य कुछ चीज़ों को पसंद करता है, और कुछ को नापसंद। जिस समय मनुष्य कहता है कि मैं अमुक चीज़ को पसंद करता हूँ, वह आभासित कर देता है कि ऐसी भी कुछ वस्तुएँ हैं, जिन्हें वह नापसंद करता है—जो उसे बुरी

लगती हैं। जिस वस्तु को मनुष्य सबसे अधिक चाहता है—वह उससे प्रेम करता है; जिस वस्तु को वह सबसे अधिक नापसंद करता है, उससे वह घृणा करता है।

पर इतना कह देना काफी नहीं। प्रश्न हो सकता है कि प्रेम और तृष्णा में क्या भेद है? तृष्णा भी तो पसंद करने की प्रवृत्ति को कहते हैं। तृष्णा तो मनुष्य को पागल बना देती है। ठीक है, पर इन दोनो में आकाश-पाताल का भेद है। प्रेम दैवी होता है, तृष्णा पैशाचिक। तृष्णा में उतावलापन रहता है, प्रेम में गंभीरता। तृष्णा का संबंध बहिर-रूप से है, प्रेम का संबंध वास्तविकता से। तृष्णा की एक परिधि होती है—उसका एक समय रहता है। वह एक प्राकृतिक, पर बुरी प्रवृत्तियों पर निर्भर, मनोवेग है—वह मनुष्य की लोलुप इंद्रियों से संबद्ध है। अस्थायी भावों को एकत्र कर मनुष्य को एक क्षण के लिये पागल बना देनेवाली प्रवृत्ति को ही तृष्णा कहते हैं। प्रेम भिन्न है।

प्रेम मनुष्य को पागल नहीं बनाता—वह उसमें विशुद्ध भाव भर देता है। प्रेम में मनुष्य अपनी वास्तविकता को भूल जाता है। वह एक प्रकार के दैवी सुख को अनुभव करने लगता है। प्रेम स्थायी है—उसका संबंध हृदय तथा मस्तिष्क, दोनो ही से है। उतावलापन मनोवेग का उफान होता है—एक क्षण में वह ठंडा पड़ जाता है। प्रेम इससे विपरीत होता है। वह स्थायी है—जीवन-भर मनुष्य के साथ रहता है।

प्रत्येक मनुष्य प्रेम करता है, यह मानी हुई बात है, और प्राय: मनुष्य ममत्व ही से प्रेम करता है। मनुष्य ममत्व को संसार में सबसे उच्च स्थान देता है, अपने प्रेमी पर वह संसार की सब वस्तुएँ न्यौछावर कर देता है। मनुष्य स्वयं मरना नहीं चाहता, अपने प्राण सबको प्यारे होते हैं। इसीलिये बिना समझे-बूझे, बिना अपने को उस वस्तु पर न्यौछावर कर देने के भावों के मनुष्य का कह देना कि मैं अमुक वस्तु से प्रेम करता हूँ, प्रेम शब्द का व्यंग्य-मात्र है। हम यह मानते हैं कि कुछ मनुष्य ऐसे हैं, जो दूसरी वस्तु पर स्वयं मर सकते हैं, और हमारे कथनानुसार मनुष्य उन्हीं वस्तुओं से प्रेम करता है।

रणवीर प्रेम करता था—किससे? सुभद्रा से।

उसका जीवन घटनाओं का एक संग्रह था। उसने अपने जानते हुए कोई भी पाप नहीं किया था। उसने वह किया, जिसे उसने ठीक समझा। वह अपनी अंतरात्मा के अलावा अपनी तर्कणा-शक्ति का भी अनुयायी था। वह भयानक था, पर उसकी भयानकता में सहृदयता का मिश्रण था। संसार की दृष्टि में वह पापी था, पर उस पापी मनुष्य की दृष्टि में वह धर्मात्मा था। उस पापी मनुष्य के कुछ थोड़े-से सिद्धांत थे। समाज की दृष्टि में वह हत्यारा था, पर अपनी समझ में उसने संसार का बड़ा भला किया था।

उसमें अमानुषिक बल था, उसके मुख पर कोमल भावों

की छाया थी। वह प्रायः हँसा करता था, यहाँ तक कि मनुष्य को मारने के समय तक वह हँसता रहता था। कितने साहस का काम था! पर उसके बाद वह एक विचित्र भाव में मग्न हो जाता था, उस समय वह अपनी आँखें बंद कर लेता था, और कुछ सोचने लगता था। न-जाने वह क्या सोचता था, उसकी आँखों से आँसू बहने लगते थे। वह उठता था, पर उसका सारा बदन काँपा करता था। धीरे-धीरे वह एक धर्माध्यक्ष की भाँति मरे हुए मनुष्य के पास आता था, और मरे हुए मनुष्य के लिये वह प्रार्थना करता था। घंटों वह प्रार्थना करता था, और फिर एकाएक उसके मुख पर वही पहले की दृढ़ता दौड़ जाती थी। वह उठ खड़ा होता था, और तेज़ी से किसी ओर चल देता था। उसे जाननेवाले मनुष्य उससे घृणा न करते थे, पर उससे अधिक मिलते भी न थे। वे उससे दूर रहने ही में अपना भला समझते थे। लोगों में वह डाकू के नाम से प्रसिद्ध था, पर ग़रीबों में वह अन्नदाता पुकारा जाता था।

अपने लिये उसने परमेश्वर से कभी प्रार्थना नहीं की। इसका कारण था। अपनी समझ में उसने कभी कोई पाप नहीं किया था, फिर वह प्रार्थना क्यों करता? हाँ, रणवीर प्रेम करता था, पर वह घृणा भी करता था। किससे, प्रतापसिंह से!

उसके जानते हुए प्रतापसिंह ने कभी उसका कोई अनिष्ट

न किया था, यहाँ तक कि वह प्रतापसिंह को ही अपना सब कुछ समझता था। बाल-काल से प्रतापसिंह ने उसे पाला था। प्रतापसिंह और उसके पिता मित्र थे, और घनिष्ट मित्र थे। मरते हुए रणवीर के पिता ने उस अपने अनाथ पुत्र का हाथ प्रतापसिंह के हाथों में दे दिया था। उसने अपने पुत्र से कहा—"तुम्हारा पिता मरता है, पर यह न समझना कि तुम अनाथ हो। प्रतापसिंह तुम्हारे साथ है, वह तुम्हें सहायता देगा। इन्हें तुम अपने पिता से अधिक मानना।" इतना कहकर रणवीर के पिता ने आँखें बंद कर लीं। उसने प्रतापसिंह से कुछ भी न कहा, शायद प्रतापसिंह से कुछ कहने की उसने कोई आवश्यकता भी नहीं समझी। वह प्रतापसिंह को जानता था, उस पर विश्वास करता था।

प्रतापसिंह ने भी अपना कर्तव्य पालन किया। उसने रणवीर को पुत्र की भाँति पाला, और उसके साथ मित्र का बर्ताव किया। उसका शासन कभी कठोर नहीं रहा। प्रतापसिंह ने रणवीर को उसकी इच्छा के अनुसार काम करने दिया। कभी वह उसके मार्ग पर बाधा की भाँति नहीं आया। रणवीर ने न जानते हुए प्रतापसिंह का बड़ा अनिष्ट किया। उसने प्रतापसिंह के मित्रों को ही मारना आरंभ किया। प्रतापसिंह को रणवीर के इस व्यवहार पर दुःख हुआ, पर वह उससे कुछ भी न बोला। चुपचाप वह

रणवीर के कामों को देखता रहा। रणवीर के कामों से उसे कभी कोई निजी हानि नहीं हुई।

रणवीर को धीरे-धीरे प्रतापसिंह की मनोवेदना के कारण ज्ञात हुए। उसे अपने कर्मों पर दुःख हुआ। मन-ही-मन वह प्रतापसिंह की सराहना करता था, पर फिर भी भयानकता के भावों से भरकर वह काम कर डालता था। पीछे उसे पश्चात्ताप होता था।

रणवीर यह सब जानते हुए भी प्रतापसिंह से घृणा करता था। उसके प्रताप को घृणा करने के कोई कारण न थे। फिर भी वह अपने में से उन भावों को न निकाल सकता था। वह प्रतापसिंह के कामों को जानता था। पर आज के पहले उसने कभी प्रतापसिंह को इतना नीच नहीं समझा। वह अब प्रतापसिंह के रक्त का प्यासा हो गया था—उसकी हत्या करना चाहता था। वह जानता था कि प्रतापसिंह उससे कहीं अधिक शक्तिशाली है, और ऐसा समझने में वह भूल करता था। वह प्रतापसिंह से इसलिये घृणा करता था, वह उसको इसलिये मारना चाहता था कि प्रतापसिंह उससे अधिक शक्ति-शाली था, वह इसी बात पर गर्व करता था। पर अगर वह प्रतापसिंह के हृदय को जानता, यदि वह उसकी कमज़ोरी को जानता, तो शायद उसे प्रतापसिंह पर दया आती, वह प्रताप-सिंह से प्रेम करने लगता।

प्रतापसिंह उसका पिता न था, पर फिर भी वह रणवीर

को अपना पुत्र मानता था। उसने रणवीर को अपनी गोद में खिलाया था, रणवीर से उसका प्रेम हो गया था, रणवीर से वह अपने को अधिक शक्तिशाली समझता था, और इसमें वह भी भूल करता था। वह रणवीर को कभी दुःख न देना चाहता था। रणवीर के सुख पर वह अपने सुखों को भी बलिदान कर सकता था। उसके हृदय में परमेश्वर और शैतान आपस में युद्ध कर रहे थे।

रणवीर ने प्रेम किया था, उस प्रेम का परिणाम उसे आशातीत न मिला। जिससे उसने प्रेम किया, उसने उससे घृणा की। फिर भी उसने प्रेम करना न छोड़ा। प्रतापसिंह के आदेशानुसार वह विदेश-भ्रमण को निकला, पर उसे शांति न मिली। जीवन उसे एक भार-सा मालूम होने लगा, विक्षिप्त-सा वह इधर-उधर घूमा करता था। यहाँ तक कि वह मृत्यु की अभिलाषा करने लगा। घूमते हुए वह लखनऊ जा पहुँचा। लखनऊ का ऐश्वर्य—यद्यपि उसने उसको पहले कई बार देखा था, उसे नया तथा आकर्षक-सा मालूम होने लगा। विराग को अनुराग दबाना चाहता था। अनुराग से छूटने का वह प्रयत्न कर रहा था। वह मरना चाहता था। पर एक प्रवृत्ति उसे मरने से रोक रही थी।

घूमते-घूमते वह गोमती के तट पर पहुँचा, वहाँ उसने जल-तरंगें नाचती हुई देखीं। एकाएक उसे एक बात याद आई। उसे मालूम हुआ कि वे तरंगें अपने अंक में खिलाने

के लिये उसका आवाहन कर रही हैं। वह झिझक उठा।

उसने अपने नेत्र उठाए, उसने जन-समुदाय की ओर एक बार सतृष्ण नेत्रों से देखा। दूसरे ही बार उसके नेत्र बंद हो गए, वह ईश्वर से प्रार्थना करने लगा। यह पहली बार उसने प्रार्थना की, और वह समझता था कि वह यह प्रार्थना अंतिम बार कर रहा है। इसके बाद वह गोमती में कूदने के लिये एक ऊँचे स्थान पर चढ़ा। थोड़ी देर तक चुपचाप खड़े रहने के बाद वह कूदने को झपटा, पर एकाएक रुक गया। किसी ने पीछे से पुकारा—"रणवीर !"

रणवीर चौंक उठा। उसने पीछे फिरकर देखा, सामने प्रकाशचंद्र खड़ा था। वह आत्महत्या न कर सका, इसका उसे दुःख हुआ। पर प्रकाशचंद्र से मिलकर उसे सुख भी हुआ। प्रकाशचंद्र उसका एक मित्र था—लड़कपन में दोनो एक ही स्थान पर रहे थे, और खेले थे। प्रकाशचंद्र से मिलकर उसे बाल्यकाल की बातें याद आ गईं। उसने प्रकाश से पूछा—"तुम यहाँ कैसे आए ?"

प्रकाशचंद्र हँस पड़ा। उसने कहा—"मैं संसार का सुख देखने आया हूँ।"

रणवीर ने एक ठंडी श्वास खींची, वह कह उठा—"और मेरे लिये संसार में कोई भी सुख नहीं है।"

प्रकाशचंद्र ने कहा—"एक बात तो मैं तुमसे बताना ही भूल गया, गुरुजी भी यहाँ आए हुए हैं।"

रणवीर चौंक उठा—"भाई साहब यहाँ आए हुए हैं, यह क्या, कहाँ? वह कहाँ हैं?"

प्रकाशचंद्र मुस्किराया। "वह शायद नवाब साहब के महल में बैठे हुए शराब ढाल रहे हैं।" इतना कहकर वह हँस पड़ा। उसने कहा—"मुझे एक काम है, मैं जानता हूँ। देखो, फिर कभी मिलूँगा।" एकाएक वह वहाँ से चला गया। रणवीर उसकी ओर देखता ही रह गया।

प्रकाशचंद्र के चले जाने के बाद रणवीर ने सोचा—"परमेश्वर अभी मेरी मृत्यु नहीं चाहता, तभी तो उसने उस समय प्रकाशचंद्र को भेज दिया था। सौभाग्य-वश प्रतापसिंह भी यहाँ ही है, फिर घृणा का अंतिम परिणाम क्यों न देख लूँ। और, अगर मरना ही है, तो सबसे अधिक शांतिमय तथा कोमल गंगा का अंक ही होगा।"

रणवीर वहाँ से चल दिया। वह नहीं जानता था कि वह कहाँ जा रहा है—वह अपने विचारों में मग्न था। इसी प्रकार वह नवाब वाजिदअली शाह के महल के पास पहुँच गया।

जिस जगह रणवीर पहुँचा था, वह महल के पीछे का भाग था। उसके सामने एक बाग़ था, और बाग़ से मिला हुआ वाजिदअली शाह का हरम था। बाग़ में पहरा था। रणवीर बाग़ की सुंदरता देखकर मुग्ध हो गया। उसने बाग़ में जाने का विचार किया। फाटकवाला सिपाही अफ़ीम की पीनक में था—रणवीर ने बाग़ में प्रवेश किया। वसंत ऋतु समाप्त हो गई थी,

पर बाग़ की शोभा अभी वैसी ही बनी थी। बेला और जुही की ख़ुशबू उठकर दिमाग़ को मस्त कर रही थी। रणवीर एका-एक रुक गया। उसने सामने एक इमारत देखी, वह आगे न बढ़ सका। झिझककर वह खड़ा हो गया, और फिर पीछे लौटा! लौटते हुए उसे कुछ अस्पष्ट वाक्य सुनाई पड़े—वे वाक्य शायद किसी ने किसी से कहे थे—स्वर रणवीर का परिचित-सा मालूम होता था। वह थोड़ी दूर चला था कि उसे किसी की पद-ध्वनि सुनाई दी। उसने रुककर पीछे देखा, एक स्त्री कपड़ों से ढकी हुई उसकी ओर बढ़ी आ रही थी। वह खड़ा हो गया। स्त्री भी उसके पास आकर रुक गई।

उस स्त्री ने रणवीर की ओर देखा, और कहा—"तुम कौन हो?"

रणवीर को आश्चर्य हुआ। उसने यद्यपि स्त्री का मुख नहीं देखा था, पर वह अनुमान करता था कि वह एक युवती है, और शायद सुंदरी भी है। उसने स्त्री के प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया।

स्त्री ने फिर कहा—"तुम कौन हो, और यहाँ कैसे आए?"

रणवीर कह उठा—"मैं कुछ नहीं जानता।"

स्त्री हँस पड़ी—"शायद तुम अजनबी हो, और यहाँ धोखे से चले आए। क्या तुम्हें बाग़ के फाटक पर किसी ने नहीं रोका?"

रणवीर ने साहस किया, उसने कहा—"नहीं। एक सिपाही तो ज़रूर बैठा था, लेकिन शायद वह सो रहा था।"

स्त्री ने गंभीर होकर कहा—"तुमने यहाँ आकर बहुत बुरा किया। तुम यह नहीं जानते कि यह अवध के नवाब वाजिद-अली शाह का ज़नाना बाग़ है—इसमें आकर कोई शख़्स यहाँ से ज़िंदा नहीं निकल सकता।"

रणवीर काँप उठा—उसके मुख पर पसीने की बूँदें झल-कने लगीं। पर एकदम उसके मुख के भाव बदल गए। उसे अपनी कमज़ोरी पर आश्चर्य हुआ। वह मृत्यु ढूँढ़ रहा था, और मृत्यु उसे मिल रही थी। उसने लापरवाही से उत्तर दिया—"नहीं, मैं कुछ भी न जानता था—रही यहाँ से ज़िंदा निकलने की बात, तो मुझे इसकी कोई फ़िक्र भी नहीं है।"

इस बार स्त्री का रणवीर पर आश्चर्य हुआ। उसने कहा—"तुम यहाँ से निकल सकते हो, थोड़ी देर ठहरो, मैं अभी आती हूँ। याद रखना कि तुम इस घने पेड़ की छाया से निकलकर कहीं न जाना, नहीं तो ठीक न होगा।"

स्त्री भीतर चली गई, और रणवीर वहीं खड़ा रहा। उसे जीवन से विराग हो गया था। वह न तो जीना चाहता था और न मरना ही। वह वहाँ एक किंकर्तव्य-विमूढ़ व्यक्ति की भाँति खड़ा था।

थोड़ी देर बाद स्त्री बाहर आई। इस बार उसके हाथ में एक पोटली थी। रणवीर के पास आकर वह रुकी। उसने

उसमें से वस्त्र निकाले। रणवीर से उसने कहा—"इन वस्त्रों को पहनकर तुम मेरे साथ चलो, रास्ते में किसी से मत बोलना।"

रणवीर ने वस्त्र पहने। ऊपर से एक बुर्क़ा भी उस पर डाल दिया गया। दोनो ने महल के अंदर प्रवेश किया।

घूमते-फिरते दोनो एक विस्तृत भवन में पहुँचे। झाड़ तथा फ़ानूस लटक रहे थे, और कमरा सुंदर चित्रों से सुसज्जित था। फ़ारस के मुलायम तथा सुंदर क़ालीन बिछे हुए थे। कमरे से लगा हुआ एक और कमरा था। स्त्री उस कमरे के द्वार पर रुकी। उसने पुकारा—"बेगम साहबा!" द्वार खुले।

रणवीर स्तंभित हो गया। वह इन सब बातों का अर्थ न समझ सका। यह बेगम कौन है, और यह स्त्री, जो उसकी इतनी शुभचिंतक है, कौन है? उस स्त्री ने कमरे में प्रवेश किया और साथ-साथ रणवीर ने भी। स्त्री ने रुककर द्वार पर ज़ंजीर चढ़ा दी, इस बार रणवीर स्वर्ग में खड़ा था।

उसके सामने एक पलँग पड़ा था, जिस पर एक मख़मल का गद्दा बिछा हुआ था। उस पर दुग्ध से भी स्वच्छ एक काम-दार रेशमी चादर बिछी हुई थी। ज़री के काम की तकिया रक्खी थी, और रेशम की एक ओढ़ने की चादर भी पड़ी थी। पलँग पर एक स्त्री बैठी हुई थी। उसका मुँह झुका हुआ था। रणवीर उसको अच्छी तरह नहीं देख सकता था, पर

उसे यह प्रतीत होने लगा कि वह उस स्त्री को जानता है। साथवाली स्त्री चली गई।

स्त्री ने आँखें उठाईं—उसके हृदय के दबे हुए भाव उमड़ पड़े, और वह फूट-फूटकर रोने लगी। रणवीर के मुख से स्त्री को देखने के साथ ही एक धीमी-सी चीख़ निकल पड़ी। वह अपना सिर पकड़कर फ़र्श पर बैठ गया। स्त्री उठी। उसने रणवीर का हाथ पकड़कर उसे पलँग पर बैठा लिया। रणवीर की जाँघों पर स्त्री अपना सिर रखकर रो रही थी, और रणवीर? वह भी रो रहा था। उसने सुभद्रा को एक वर्ष से न देखा था। आज एकाएक वह उसे मिल गई, पर किस दशा में? रणवीर सुभद्रा की स्थिति समझ गया। उसने सोचा कि प्रतापसिंह का कहना ठीक था।

पर, फिर भी वह प्रतापसिंह की बात पर एकाएक विश्वास न कर सका। सुभद्रा ने उसे फिर अपने यहाँ बुलाया क्यों? यदि वह रणवीर से प्रेम नहीं करती थी, तो वह आज रण-वीर को देखकर रोने क्यों लगी? यह सब सोचते हुए भी वह रो उठा था। उसके भी हृदय का मनोवेग एकाएक उमड़ पड़ा। रणवीर ने अपना सिर उठाया। उसने सुभद्रा की ओर देखा, वह अब भी रो रही थी। उसने सुभद्रा में परिवर्तन देखा। उसने देखा, सुभद्रा दुबली हो गई थी, पर उसका सौंदर्य उस दुबलेपन के कारण कहीं अधिक बढ़ गया था। उसने कहा—"सुभद्रा, तुम यहाँ कैसे आईं?"

सुभद्रा इस प्रश्न पर और भी रोने लगी। रोते हुए उसने कहा—"लोग मुझे यहाँ जबरदस्ती खींच लाए। मुझे बचानेवाला तो कोई था ही नहीं। प्रतापसिंह और अन्य व्यक्ति एक दिन मेरे द्वार पहुँचे। मेरी माता की इच्छा के विरुद्ध मुझे वे यहाँ उठा लाए, और फिर मेरा नवाब साहब से विवाह करा दिया गया।"

रणवीर प्रतापसिंह का नाम सुनकर चौंक उठा, पर उसने फिर कुछ नहीं कहा! वह मौन बैठा था। उसने यह प्रश्न किया—"तुमने मुझे यहाँ क्यों बुलाया?"

सुभद्रा का रोना बंद हो चुका था। यह प्रश्न उसके हृदय में तीर-सा लगा। उसकी आँखें, जो उस समय सूख गई थीं, फिर आँसुओं से भर गईं। उसने कहा—"आह! यह कैसा प्रश्न! तुमने मुझे भुला दिया। तुमने मुझसे प्रेम करके मुझे एक बार ही ठुकरा दिया, पर मैं तुम्हें न भुला सकी। बहुत भूलने का प्रयत्न किया, पर तुम्हारी याद हृदय से न गई। सुख और यह ऐश्वर्य मेरे लिये मिट्टी के समान हैं। मुझे प्रेम चाहिए, प्रेम! हृदय की आग न बुझी! आज तुमको देखा। मैंने यह सोचा कि तुम मुझसे मिलने आए हो, लेकिन फिर सोचा कि तुम अपनी इच्छा से मुझसे नहीं मिल सकते। जी चाहा कि तुमसे कुछ बातें करूँ, और तुम्हारे सामने अपनी वेदना प्रकट करूँ। यह सोचा कि तुम इतने हृदय-हीन न होगे कि मुझे भूल जाओ। इसीलिये मैंने

तुम्हें बुलवाया था। हृदय को न रोक सकी, यही कमज़ोरी थी।"

रणवीर इस उत्तर को सुनकर अवाक् रह गया। उसे मालूम हो गया कि उसकी भूल थी। उसने सुभद्रा को देखा, उसके नेत्रों में करुणा का निवास था। रणवीर ने फिर कहा—"समझा सुभद्रा, पर अब क्या करूँ?"

सुभद्रा कह उठी—"कहते हो, अब क्या करूँ? आह! इस हृदय को नहीं देखते! मुझे यह स्वर्ग नहीं चाहिए; यह मेरे लिये नरक बन रहा है। यहाँ नाच तथा गाने होते हैं, हँसी से महल-भर गूँजने लगता है, पर मैं करुणा के सागर में डूबी रहती हूँ। मुझे यहाँ से बाहर ले चलो। मुझे धन नहीं चाहिए, ऐश्वर्य नहीं चाहिए। मुझे सुख चाहिए, यहाँ सुख नहीं; सुख तुम्हारे साथ में है। तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, मुझे यहाँ से ले चलो। चलो, देश छोड़ दें। मेहनत-मज़दूरी करके हम दोनो रहेंगे, पर एक दूसरे के पास रहेंगे। खाएँगे तो साथ, हँसेंगे तो साथ, रोएँगे तो साथ, और मरेंगे तो साथ। मेरी ओर देखो—मेरी ओर! ऐ हृदय-हीन व्यक्ति, क्या प्रेम का परिणाम यही होता है?"

सुभद्रा पागल की भाँति बक रही थी। पर रणवीर ने देखा कि उसके वाक्यों में कितनी सत्यता तथा दृढ़ता है। सुभद्रा की दशा पर तरस आया और साथ-साथ अपनी दशा पर भी। पर वह क्या कर सकता था?

उसने अपना सिर उठाया—"सुभद्रा, तुम बेगम हो। तुम नवाब साहब की स्त्री हो, और नवाब साहब मेरे राजा हैं। राजा पिता के तुल्य होता है सुभद्रा, समझती हो।"

सुभद्रा ने रणवीर की ओर देखा, वह एकाएक काँप उठी। रणवीर के मुख पर सफ़ेदी छाई हुई थी। उसके मुख के भाव कठोर और दृढ़ थे। वह कह उठी—"सब समझती हूँ, पर क्या करूँ? हाय रे हृदय, वह नहीं मानता। सारी तर्कणा-शक्ति लोप हो जाती है—प्रेम अंधा है। समझे।"

रणवीर मौन हो गया। वह अपने विचारों में डूब गया। सुभद्रा उठी। उसी समय दासी ने आकर ख़बर दी कि नवाब साहब आ रहे हैं।

सुभद्रा तीर की भाँति खड़ी हो गई। उसने रणवीर को पास ही कमरे में छिपा दिया। एक मिनट बाद ही द्वार खुले, और नवाब वाजिदअली शाह ने कमरे में प्रवेश किया। नवाब वाजिदअली शाह अकेले न थे, वरन् उनके साथ एक और मनुष्य भी था। सुभद्रा ने उसे पहचान लिया, वह प्रतापसिंह था। सुभद्रा प्रतापसिंह को देखते ही चौंक पड़ी। प्रतापसिंह ने सुभद्रा से पूछा—"सुभद्रा, अच्छी तरह से तो हो, तुम्हें यहाँ कोई कष्ट तो नहीं है?"

इतना कहकर उसने नवाब साहब से कहा—"हुज़ूर, आपकी बेगम साहबा मेरी बहन हैं, यह तो आप जानते हैं।" उसने सुभद्रा की ओर देखा, वह भी कह उठी—

"हाँ, यह मेरे रिश्तेदार हैं—हम दोनो आपस में भाई-बहन लगते हैं।"

नवाब साहब मुस्किरा पड़े। उन्होंने राधारमण से कहा—"अच्छा जनाब, अब आप लोग बातें करें, मेरी यहाँ कोई ज़रूरत नहीं।" इतना कहकर नवाब साहब चले गए।

रणवीर जिस कमरे में था, वह सुभद्रा—जिसका नाम अब गुलशन हो गया था—के कमरे से मिला था। रणवीर द्वार के पास खड़ा था। द्वार पर केवल एक परदा पड़ा था। वह राधारमण की बातों को सुन रहा था। उसे उसकी बातों पर कुछ थोड़ा-सा आश्चर्य हुआ। राधारमण को वहाँ देखकर उसका मुख क्रोध से लाल हो गया।

नवाब वाजिदअली शाह के चले जाने के बाद राधारमण पलँग पर बैठ गया। उसने कहा—"गुलशन, जानती हो कि मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।"

गुलशन की आँखें राधारमण की आँखों से मिली थीं, उसने कहा—"प्रताप, तुम जानते हो कि मैं तुम्हें शुरू से ही प्यार करती हूँ। फिर भी तुम मुझसे ऐसी बातें करते हो?"

राधारमण कह उठा—"देखो, मैं अब प्रतापसिंह नहीं हूँ। मेरा नाम अब राधारमण है, और मैं अब तुम्हारा रिश्तेदार हूँ।" गुलशन बोल उठी—"यह मुझे न मालूम था।"

राधारमण ने कहा—"ठीक है, अब तो तुम्हें मालूम हो गया। देखो, तुम्हारे पीछे मैंने दुनिया की धूल फाँकी है।

तुम्हारा प्रेम मुझे यहाँ खींच लाया है। प्यारी ! हृदय की आग अब तो शांत करो। मेरे पास आओ ।"

गुलशन काँप उठी। उसने चाहा कि भाग जायँ, पर वह भाग न सकी। उसके पैर आप-ही-आप उठ रहे थे, और वह राधारमण की ओर खिंची जा रही थी। लाख प्रयत्न करने पर भी वह बिना कहे न रह सकी; बोली—"प्यारे, इस हृदय की भी आग तुमसे ही शांत होगी।" इतना कहकर वह पलँग की ओर बढ़ी।

रणवीर यह सब देख रहा था। उसे राधारमण की अमानुषिक शक्ति का पता था, और इसीलिये वह गुलशन के इस बर्ताव पर आश्चर्य न कर सका। पर वह राधारमण के उस व्यवहार को सह भी न सका। उस मनुष्य ने उसकी निधि को एक दूसरे मनुष्य के हाथ सौंप दिया, और अब वह उसी निधि को स्वयं बर्तना चाहता था, यह असह्य था।

तेज़ी से वह अपने कमरे से निकला। उसके हाथ में एक कटार थी। गुलशन रुक गई, राधारमण चकित हो गया। जब तक राधारमण देखे, रणवीर ने प्रहार किया। राधारमण अचेत बैठा था। कटार उस पर वज्र की भाँति गिरी, और उसी समय राधारमण की आँखें रणवीर की आँखों से मिल गईं। कटार बड़े वेग से आई थी। वह राधारमण की छाती में घुसी—एक हलका-सा घाव ही हुआ था कि कटार रणवीर के हाथ से छूट पड़ी। राधारमण उठ खड़ा

हुआ। वह उस समय भी रणवीर की ओर देख रहा था। उसने कहा—"रणवीर, तुम यहाँ कैसे आए?" राधारमण को रणवीर की, महल में, उपस्थिति पर बड़ा आश्चर्य हुआ।

रणवीर ने कोई उत्तर न दिया। राधारमण ने कहा—"लड़के, अपने पिता पर ही तूने प्रहार किया। नहीं जानता तू मुझे। मैं अभी तुझे जल्लादों के हाथ सिपुर्द करवाए देता हूँ।" रणवीर मौन खड़ा रहा।

राधारमण ने फिर कहा—"लेकिन नहीं, यह काम मुझसे न होगा। मैं तुझसे प्रेम करता हूँ, मैं तुझे कोई हानि नहीं पहुँचाऊँगा। तूने मुझे मार डालने का प्रयत्न किया, पर मैं तुझ पर दया करूँगा। देखो, आज ही तुम यह महल छोड़ दो, नहीं तो मैं तुम्हारा काल हो जाऊँगा। कल ही तुम कुत्तों से नुचवा लिए जाओगे। समझे!"

राधारमण की आँखों में आग जल रही थी—उसके मुख पर दृढ़ता के भाव थे, पर उसका हृदय फड़क रहा था। उसने फिर कहा—"मैं जाता हूँ, कल मैं तुमसे यहाँ न मिलूँगा, समझे!" इतना कहकर राधारमण वहाँ से चला गया।

चौथा परिच्छेद

प्रकाशचंद्र का विवाह उसके बाल्यकाल में लोक-नीति के अनुसार जैसा होना चाहिए था, न हुआ था। इसके कारण थे। वे आगे चलकर प्रकट हो जायँगे। जिस समय उसका विवाह हुआ था, उस समय उसकी अवस्था प्रायः बीस वर्ष की थी। उसकी स्त्री का नाम सरस्वती था, और सरस्वती जिस समय ससुराल आई थी, उस समय पूरे सोलह वर्ष की हो चुकी थी। सरस्वती गंभीर प्रकृति की थी, और जैसी कि उसने शिक्षा पाई थी, वह धर्म-निष्ठा थी। पर प्रकाशचंद्र और सरस्वती में आकाश-पाताल का अंतर था। सरस्वती सुंदरी थी—एक प्रकार से वह अतुल सुंदरी भी कही जा सकती थी। और, प्रकाशचंद्र यदि बदसूरत न था, तो खूबसूरत भी न था। उसका रंग गेहुआँ था, और उसके मुख पर रूखापन छाया हुआ था। प्रकाशचंद्र ज्योतिष का एक अच्छा पंडित था—अपना सारा जीवन उसने अध्ययन में बिताया था। उसके नेत्र गढ़ों में धँस गए थे, और उसके मुख पर पीलापन छाया हुआ था। उसने रात नहीं जानी, और दिन नहीं जाना। ग़रीब का पुत्र होने के कारण उसको पौष्टिक भोजन भी नहीं मिला था, तिस पर

उसने अपनी शारीरिक अवस्था पर ध्यान न देते हुए विद्या प्राप्त करने के लिये अथक परिश्रम किया था। उस पर भी वह निम्न कुल का था। इसलिये उसमें शारीरिक सौंदर्य का सर्वथा अभाव था। प्रकाशचंद्र का क़द मझोला था और शरीर दुबला। दुर्भाग्य-वश उसे एक ऐसा रत्न मिला—वह रत्न, जिसका मूल्य परखने में वह असमर्थ था। और वह सरस्वती ?

सरस्वती का मुख गुलाब के पुष्प की भाँति कोमल तथा सुंदर था। दुर्भाग्य-वश सरस्वती एक अरसिक मनुष्य के साथ बाँध दी गई थी, पर वह अपनी स्थिति समझती थी। वह हिंदू-ललना थी। वह अपना कर्तव्य जानती थी। प्रकाशचंद्र से वह प्रेम न करती थी, पर प्रेम करने का प्रयत्न करती थी। उसका हृदय कभी-कभी उस बंधन को तोड़ने के लिये उससे विद्रोह करता था, पर उस समय उसकी अंतरात्मा उसकी सहायता करती थी। उसकी अंतरात्मा प्रबल थी, उसे धर्म का अवलंब था। वह पति की सेवा करती थी, पति के दुःख को अपना और अपने दुःख को पति का समझने की चेष्टा करती थी। वह पति में ही ममत्व को मिला देना चाहती थी। पति के चरणों में वह बैठती थी, उसे उन पर अनुराग न था, पर अनुराग उत्पन्न करने का वह प्रयत्न करती थी, किंतु फिर भी उसका हृदय विद्रोह करता था।

और प्रकाशचंद्र ?

वह यदि पशु न था, तो वह मनुष्य भी न था। भावों से शून्य होते हुए भी उसने कभी भावों को समझने की चेष्टा न की थी। वह सरस्वती को प्यार करता था, क्योंकि वह सुंदरी थी, पर वह उससे प्रेम न करता था। शायद प्रकाशचंद्र प्रेम के भावों को समझता ही न था। सरस्वती उसकी दृष्टि में एक जड़ पदार्थ थी—अपना सुख उसके लिये सब कुछ था। अपने सुख के आगे वह संसार की परवा न करता था, अपने सुखों पर वह सरस्वती के सुखों को न्यौछावर कर सकता था, और प्रायः कर ही देता था। सरस्वती चाहे मरे चाहे जिए, यदि सरस्वती के कष्ट से उसे थोड़ा-सा भी सुख प्राप्त हो सकता था, तो उसे सरस्वती के कष्टों की कोई भी चिंता न थी। प्रेम तथा भावशून्य मनुष्य पशु के तुल्य ही हुआ करता है।

प्रकाशचंद्र घोर स्वार्थी था। उसकी ससुराल अमीर थी, और उसके कारण हैं। प्रकाशचंद्र एक बार बाहर गया था। मुंशी रामप्रकाश साहब से, जो एक धनी व्यक्ति थे, रास्ते में इसकी मुलाक़ात हुई। बातें होती रहीं। प्रकाशचंद्र के ज्ञान पर मुग्ध होकर उन्होंने अपनी कन्या उसके हाथ में सौंप दी थी। हाँ, तो प्रकाशचंद्र की ससुराल अमीर थी, और प्रकाशचंद्र प्रायः ससुराल से धन प्राप्त करता था। वह फ़िज़ूलख़र्च न था, एक प्रकार से वह कृपण था, पर फिर भी धन उसे प्यारा था। प्रकाशचंद्र ससुराल से बहाने बनाकर धन प्राप्त करता था। ससुरालवाले सहृदय

थे। वे जानते थे कि प्रकाशचंद्र उनसे अनुचित ढंग से धन प्राप्त कर रहा है, फिर भी वे मौन रहते थे। सब कुछ देखते हुए भी वे न देखते थे। उन्हें प्रकाशचंद्र की इस नीचता तथा तुच्छता पर दुःख अवश्य होता था, पर सरस्वती पतिदेव के अपराधों को अपने सिर पर ले लेती थी। सरस्वती के पिता और भाई यह जानते थे कि अमुक काम में दोष प्रकाशचंद्र का है, सरस्वती का नहीं; पर सरस्वती को देखकर, उसके दोष को अपने ऊपर ले लेने के कारण वे मौन हो जाते थे।

सरस्वती का चरित्र उज्ज्वल था। वह एक धनी व्यक्ति की कन्या थी। पिता के यहाँ उसे खाने-पहनने का दुःख कभी नहीं रहा, यहाँ तक कि वह फ़िज़ूलख़र्च हो गई थी। पिता के घर पर उसे धन का मोह न था, वह खुले हाथों ख़र्च करती थी, और ख़र्च का कभी हिसाब-किताब भी न रखती थी।

ससुराल आकर सरस्वती को कठिनाइयों का मुक़ाबला करना पड़ा। प्रकाशचंद्र के पिता का नाम मुंशी मदारीलाल था। मुंशी मदारीलाल बड़े चलते-पुरज़े आदमी थे, यह वह स्वयं मानते थे। दुर्भाग्य-वश मुंशीजी अधिक पढ़े-लिखे न थे, और उनका पढ़ा-लिखा न होना ही उनकी उन्नति में बाधक हुआ। रुपया पैदा करना मुंशीजी ख़ूब जानते थे, और इसीलिये यह उनका दुर्भाग्य था कि वह किसी ऊँचे

पद पर न थे। जो काम उनके बाप-दादों ने किया था, वही उन्होंने भी किया। वह पटवारी थे। तिस पर भी मुंशीजी ने ख़ूब पैदा किया। लेकिन मुंशीजी कंजूस परले सिरे के थे। उनका यह गुण उनके अन्य गुणों के साथ उनके पुत्र में भी आया, और किसी अधिक अंश में आया। कंजूसी में प्रकाशचंद्र मुंशी मदारीलाल के भी कान काटते थे।

सरस्वती को ससुराल में सुख न था। सुख को तो उसने उसी दिन तिलांजलि दे दी थी, जिस दिन उसने प्रकाशचंद्र के साथ सात भाँवरें फेरी थीं। उसको ससुराल काल-सी लगती थी, फिर भी वह ससुराल की चाल-ढाल सीखने का प्रयत्न करती थी। वह वह काम करना चाहती थी, जिसका करना उसके लिये असंभव था।

प्रकाशचंद्र का एक रिश्तेदार था। उसका नाम था भवानी-शंकर। भवानीशंकर अवस्था में प्रकाशचंद्र से कुछ छोटा था, पर वह अच्छे कुल का था। उसके पिता एक छोटे-से ताल्लुक़-दार थे, पर दुर्भाग्य-वश यथेष्ट ज़मींदारी उसके पिता की मृत्यु के बाद उनका क़र्ज़ चुकाने में ही निकल गई। भवानीशंकर प्रकाशचंद्र के घर के पास ही रहता था। प्रकाशचंद्र से उसकी घनिष्ठता थी, और वह प्रायः प्रकाशचंद्र के घर पर आया-जाया करता था। वह सरस्वती के सामने निकलता था।

भवानीशंकर नवयुवक था। वह चरित्र तथा शरीर, दोनो में ही प्रकाशचंद्र से अधिक सुंदर था। वह एक

प्रतिभाशाली व्यक्ति था। उसका विवाह हो चुका था, और उसकी स्त्री का नाम उर्मिला था। भवानीशंकर उर्मिला से प्रेम करता था, और उर्मिला का सर्वस्व भवानीशंकर था। उर्मिला सुंदरी थी, और उसे देखनेवाला व्यक्ति उसकी सुंदरता पर मोहित हो जाता था। भवानीशंकर उर्मिला पर मोहित था, और उर्मिला उस पर। दोनो का जोड़ा सराहनीय था। उर्मिला में चंचलता तथा लज्जा साथ-साथ विद्यमान थी, और भवानीशंकर में साहस तथा गंभीरता का सम्मिश्रण था। दोनो एक दूसरे को प्राणों से अधिक चाहते थे।

भवानीशंकर प्रकाशचंद्र के घर पर आता था, और सरस्वती तथा प्रकाशचंद्र से बातचीत किया करता था। सरस्वती से तो पहले वह दूर रहता था, पर धीरे-धीरे उसके बिना जाने हुए वह सरस्वती की ओर आकर्षित होने लगा। इधर उर्मिला पितृगृह गई, और उधर भवानीशंकर का सरस्वती के घर आना-जाना बढ़ने लगा। दोनो घंटों एकांत में साथ बैठे हुए बातचीत किया करते थे, यहाँ तक कि दोनो को बिना एक दूसरे को देखे चैन न पड़ती थी। पर दोनो ही का प्रेम मौन था। दोनो अपने भावों को दबाने की चेष्टा करते थे; पर होता वही था, जो ऐसे अवसरों पर हुआ करता है। दोनो एक दूसरे के भावों को जानते थे, और दबाने की चेष्टा करते हुए भी दोनो के भाव दोनो पर

प्रकट हो जाते थे। उस समय भवानीशंकर का मुख लाल हो जाता था, और सरस्वती का मुख पीला। दोनो अपना सिर झुका लेते थे। सरस्वती की आँखों में आँसू झलकने लगते थे। वह वहाँ से उठकर चली जाती थी।

महीनों बीत गए। भवानीशंकर प्रकाशचंद्र के घर पर आता-जाता रहा, पर प्रकाशचंद्र को कभी उस पर शक न हुआ। प्रकाशचंद्र के सामने ही भवानीशंकर और सरस्वती में बातचीत होती थी, यहाँ तक कि हँसी-मज़ाक़ भी हुआ करता था। प्रकाशचंद्र भवानीशंकर को जानता था, और इसीलिये वह उस पर विश्वास करता था। पर वह 'आकर्षण' अथवा 'तृष्णा' की वास्तविकता को न जानता था। यहीं वह भूलता था।

उर्मिला मायके से लौट आई—उसने अपने स्वामी में यथेष्ट अंतर पाया। वह इसका कारण जानने की चेष्टा करने लगी, पर वह कारण का पता लगाने में असमर्थ रही। भवानीशंकर जिस समय घर पर आता था, प्रसन्न रहता था। पर जैसे ही उसका उर्मिला से साक्षात् होता था, वैसे ही उसका मुख मलीन हो जाता था। वह उर्मिला से प्रेम करता था, घंटों वह उर्मिला के पास बैठा रहता था। जिस समय वह उर्मिला के मुख की ओर देखता था, उसका दुःख दूना हो जाता था। स्वामी के दुःख ने उर्मिला को भी दुःखित कर दिया था।

भवानीशंकर उर्मिला के पास अधिक न आता था, पर जब वह आता था, उसका प्रेम उबल पड़ता था। वह उर्मिला से इस प्रकार लिपट जाता था, मानो उसे कोई उर्मिला से छीन रहा था। कभी-कभी वह रोने लगता था। एक दिन उर्मिला ने इस वेदना का कारण पूछा। भवानीशंकर ने सच्चे हृदय से सब कथा कह दी। उर्मिला ने उस कथा को आदि से अंत तक धैर्य-पूर्वक सुना—सुनने के बाद उसका मुख पीला पड़ गया। उस पर एक वज्र-प्रहार-सा हुआ, पर साथ-साथ उसे प्रसन्नता भी हुई। प्रसन्नता इस कारण हुई कि उसके स्वामी ने उसे धोखा नहीं दिया, और उसका स्वामी उससे अब भी प्रेम करता था।

भवानीशंकर उर्मिला के सामने रो पड़ा—"मुझे क्षमा करो।"

उर्मिला भी रोने लगी। उर्मिला का यदि संसार में कोई था, तो उसका स्वामी हो। उर्मिला, जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं, प्रेम करती थी, यहाँ तक कि उसका प्रेम पूजा में परिणत हो गया था।

और भवानीशंकर?

भवानीशंकर भी उर्मिला से प्रेम करता था। उर्मिला से वह जीवन-भर के लिये बँध गया था, पर वह उर्मिला के व्यवहार तथा चरित्र, दोनो पर मोहित था। भवानीशंकर

को घर बैठे, विना प्रयास ही अमृत मिल गया था। पर वह संसार से अनभिज्ञ था। उसने शायद मदिरा नहीं देखी थी। जिस समय उसने मदिरा देखी, वह दीवाना हो गया। तृष्णा के सागर में वह डूब गया। पर फिर भी उर्मिला पर से उसका प्रेम कम नहीं हुआ। उसने कहा—"तुम नहीं जानतीं—आह! सरस्वती को तुम नहीं जानतीं! जब तक मैं तुम्हारे पास रहता हूँ, तब तक मैं वास्तविकता का अनुभव करता हूँ, पर जैसे ही तुमसे पृथक् होता हूँ, वैसे ही तृष्णा का भूत सवार हो जाता है। स्वप्न-संसार में मैं विचरण करने लगता हूँ। चलो प्रिये, यहाँ से चलें। ऐसी जगह चलें, जहाँ सरस्वती को हमारा पता न लग सके।"

उर्मिला का हृदय धड़क रहा। था वह भवानीशंकर के भावों को समझती थी। उसे भवानीशंकर की इस अवस्था पर दुःख था। साहस करके उसने कहा—"प्रिय, मैं तुम्हें सुखी देखना चाहती हूँ। मुझे उसी में सुख है, जिसमें तुमको। क्या प्यारे, यहाँ से जाने पर तुम शांति पा सकोगे?"

भवानीशंकर कह उठा—"हाँ प्यारी, शांति तुम्हारे साथ है। जब तक मैं यहाँ रहूँगा, तब तक मैं शांति न पा सकूँगा। चलो प्यारी, यहाँ से भाग चलें।" भवानीशंकर रुक गया। वह काँप रहा था।

उसने फिर आरंभ किया—"कल ही प्रातःकाल के समय चलो, यहाँ से चल दें। आज असबाब ठीक कर लो। देखो,

यदि मैं सरस्वती के यहाँ कल जाना चाहूँ, तो मुझे मत जाने देना।"

उर्मिला असबाब बाँधने लगी, और भवानीशंकर सो गया। प्रातःकाल भवानीशंकर ने उठकर उर्मिला से कहा—"हे उर्मिला, आज चलना है। एक बात है, उर्मिला, यदि आज्ञा दो, तो एक बार सरस्वती से मिल लूँ।"

उर्मिला ने भवानीशंकर का हाथ पकड़ लिया। थोड़ी देर तक वह मौन खड़ी रही। उसने फिर कहा—"हाँ, मिल लो प्यारे, पर लौट आना।" उर्मिला ने अपना मुख फेर लिया, उसके नेत्रों में आँसू भर आए थे।

भवानीशंकर प्रकाशचंद्र के घर गया। प्रकाशचंद्र भवानी-शंकर को देखकर मुस्किराया। उसने कहा—"कहो भवानी-शंकर, आज तुम सुस्त कैसे मालूम होते हो।"

भवानीशंकर चौंक उठा। उसने भी मुस्किराकर कहा—"सुस्त हूँ, कैसी बातें करते हो?" थोड़ी देर तक चुप रहकर उसने फिर कहा—"शायद, जानते हो कि आज मैं बाहर जा रहा हूँ।"

प्रकाशचंद्र कह उठा—"बाहर कहाँ जा रहे हो?"

भवानीशंकर ने उत्तर दिया—"ठीक नहीं, शायद यहाँ से मैं लखनऊ जाऊँ।"

आगे बातचीत न हुई। भवानीशंकर भीतर चला गया। उस समय सरस्वती बैठी हुई पान खा रही थी। भवानीशंकर

को देखते ही वह मुस्किराई। उसने भवानीशंकर को पान दिया।

भवानीशंकर भी सरस्वती को देखकर मुस्किराया। पान उसने खा लिया, पर एकाएक वह गंभीर हो गया। उसने सरस्वती से कहा—"सरस्वती, आज मैं बाहर जा रहा हूँ।"

सरस्वती चौंक उठी। उसने कहा—"बाहर जा रहे हो—क्यों?"

भवानीशंकर ने धीरे से उत्तर दिया—"क्यों, यह तो शायद बताना बड़ा कठिन काम है।"

सरस्वती—"कठिन काम है, मुझसे भी तुम बातें छिपाओगे?"

भवानीशंकर का मुख पीला पड़ गया। उसने कहा—"बुरा मान गईं सरस्वती, मैं तुम्हें बताए देता हूँ। लंबी कहानी है। सुनो।"

सरस्वती को भवानीशंकर के बर्ताव पर आश्चर्य हुआ।

भवानीशंकर ने आरंभ किया—"सरस्वती, जानती हो कि मेरा विवाह हो गया है।"

सरस्वती कह उठी—"हाँ।" सरस्वती का हृदय धड़कने लगा।

भवानीशंकर ने फिर कहा—"और तुम्हारा भी।" सरस्वती का मुख पीला पड़ गया।

"सुनो।" भवानीशंकर के मुख पर एक करुणा-मिश्रित

गंभीरता का भाव छा गया। "हम दोनो के विवाह हो चुके हैं—मेरे एक स्त्री है, और तुम्हारे पति...." सरस्वती के मुख से एक चीख़ निकल गई। उसने कहा—"बस करो!"

भवानीशंकर ने धीरे से कहा—"सरस्वती, इतनी अस्थिरता से लाभ? मेरी कहानी सुनो।"

सरस्वती ने एक ठंडी श्वास ली। उसने कहा—"कहो।"

भवानीशंकर ने फिर कहा—"सरस्वती, वह दिन अब भी मेरी आँखों के आगे है, जिस दिन मैंने पहलेपहल तुमको देखा था। उस दिन के पहले मैंने शायद प्रेम नहीं किया था। तुमको देखकर मेरा हृदय खिल उठा, मैं प्रेम में मतवाला हो गया। उस प्रेम का इतना भयानक प्रभाव हुआ कि मैं अपने को भूल गया। और, शायद तुम भी अपने को भूल गईं।"

सरस्वती कह उठी—"हाँ।" पर उसके इस कहने में एक दर्द भरा था।

भवानीशंकर का स्वर काँपने लगा। "पर मैं समझता हूँ कि हम दोनो ने बुरा किया। प्रेम से ऊपर भी कोई एक वस्तु है, जिसे कर्तव्य कहते हैं—हमने कर्तव्य को भुला दिया।"

सरस्वती की आँखें एकाएक लाल हो गईं। एक सिंहनी की भाँति वह गरज उठी—"ठीक कहते हो भवानी बाबू। पर इसमें दोष किसका है? तुम्हारा। तुमने मुझे नीचे गिराया, तुमने मुझे इस पाप-मार्ग का गामी बनाया। तुम्हारे पहले मैं अनजान थी, कभी-कभी हृदय उस पशु से, जो मेरा

स्वामी है, हटने का प्रयत्न करता था, पर मैं उसे रोका करती थी। पर जब से तुम आए हो, हृदय बलवान् हो गया, अंतरात्मा कमज़ोर पड़ गई। कर्तव्य की याद तुमने पहले क्यों नहीं दिलाई? बोलो—" इतना कहकर उसने भवानीशंकर का हाथ ज़ोर से पकड़ लिया। उसकी आँखें जल रही थीं—उसका शरीर काँप रहा था।

भवानीशंकर को दुःख हुआ। उसने कहा—"ठीक कहती हो सरस्वती, दोषी मैं हूँ। तुम मेरे प्रेम को नहीं जानतीं सरस्वती, मैं एक पल भी तुमसे अलग नहीं रह सकता। मैं यहाँ से नहीं जाना चाहता, पर कर्तव्य मुझे खींच रहा है।" उसकी आँखों में आँसू भर आए, और वह बालकों की भाँति फूट-फूटकर रोने लगा।

सरस्वती के मुख के भाव बदल गए। वह भी भवानीशंकर के कंधे पर अपना सिर रखकर रोने लगी।

थोड़ी देर तक दोनो मौन रहे, दोनो अपने-अपने विचारों में मग्न थे। सरस्वती ने निस्तब्धता तोड़ी—"जाते हो, कहाँ जाओगे?"

भवानीशंकर कह उठा—"अब न जाऊँगा।"

सरस्वती मुस्किराई—"इतनी जल्दी विचार बदल गया। पर देखो, यदि जाना, तो मिल अवश्य लेना।" भवानीशंकर मौन रहा। सरस्वती ने फिर कहा—"यदि जाते, तो कहाँ जाते?"

चौथा परिच्छेद

भवानीशंकर कह उठा—"कुछ निश्चय नहीं किया था, शायद लखनऊ जाता।"

इतने में प्रकाशचंद्र ने पुकारा—"सरस्वती!" सरस्वती आँगन में चली गई। प्रकाशचंद्र ने कहा—"भवानीशंकर कहाँ है?" सरस्वती ने उत्तर दिया—"भवानीशंकर चला गया।"

प्रकाशचंद्र ने कमरे में प्रवेश किया, और दूसरे द्वार से भवानीशंकर कमरे के बाहर निकला।

पाँचवाँ परिच्छेद

भवानीशंकर सरस्वती के घर के बाहर निकला, उस समय उसका चित्त चंचल था। उसके हृदय में दो भाव आपस में युद्ध कर रहे थे। एक दूसरे पर विजय पाना चाहता था। हृदय कहता था—"कहाँ जाते हो—संसार का सुख देखो। सरस्वती तुमसे प्रेम करती है और तुम सरस्वती से, फिर इस स्थान को छोड़ने से लाभ?" और उसी समय उसके आगे सरस्वती की मूर्ति नाचने लगती थी। पर जिस समय वह रुकने का निश्चय करने लगता था, उसी समय उसकी अंतरात्मा उसे धिक्कारती थी। अंतरात्मा कहती थी—"तुम पाप कर रहे हो, तुम अपने प्रति, अपनी स्त्री के प्रति, सरस्वती के प्रति और प्रकाशचंद्र के प्रति विश्वासघात कर रहे हो।" उसी समय उसका मुख पीला पड़ जाता था।

हृदय अंतरात्मा को जीतना चाहता था और अंतरात्मा हृदय को। भवानीशंकर इन्हीं समस्याओं में उलझा हुआ था।

भवानीशंकर घर लौटा। हृदय जानता था कि घर लौटने से उसका पक्ष निर्बल पड़ जायगा। फिर भी अंतरात्मा उसे घर जाने को बाध्य करती थी। हृदय चाहता था कि वह कहीं घूमे, प्रसन्नता के झोंके से वह अंतरात्मा की चुभती हुई

वेदना को भुला दे; पर अंतरात्मा चाहती थी कि वह सोचे और विचार करे। विजय अंतरात्मा की रही।

जिस समय वह घर लौटा, उस समय उर्मिला उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। भवानीशंकर के आते ही वह दौड़कर भवानीशंकर से लिपटकर एक बालिका की भाँति फूट-फूटकर रोने लगी। भवानीशंकर उर्मिला के इस व्यवहार के लिये तैयार न था। उर्मिला के इस निर्बोध तथा करुण भाव ने उसके हृदय को डाँवाडोल कर दिया। अंतरात्मा और भी प्रबल पड़ गई।

भवानीशंकर ने उर्मिला को शांत किया। रो चुकने के बाद उर्मिला से भवानीशंकर ने उसके रोने का कारण पूछा। उर्मिला ने मुस्किराते हुए कहा—'मुझे नहीं मालूम।"

भवानीशंकर भी मुस्किरा पड़ा। उसने पूछा—"आख़िर कोई कारण तो अवश्य होगा।"

उर्मिला ने लज्जा के भाव से उत्तर दिया—"इतनी देर हो गई थी, मैं समझती थी कि तुम न आओगे, तुम्हारे आने से हृदय एकाएक भर आया।"

भवानीशंकर हँसा, पर एकाएक गंभीर हो गया। उसने कहा—"चलो, इसी समय हम यहाँ से चल दें।"

भवानीशंकर साधारणतया धनी था। उसके पिता का उसके बाल्यकाल ही में देहांत हो गया था। उसके माता थी। ज़मींदारी से उसका निर्वाह होता था, और ज़मींदारी यथेष्ट

थी। माता तथा स्त्री के साथ भवानीशंकर लखनऊ की ओर रवाना हुआ।

उसके लखनऊ जाने के कारण थे। उसके पास उसके एक संबंधी का निमंत्रण आया था। वह संबंधी लखनऊ में एक पदाधिकारी था। उसने भवानीशंकर की माता से कई बार भवानीशंकर को लखनऊ भेजने के लिये कहा भी था। पर भवानीशंकर को उसकी जन्मभूमि से बड़ा प्रेम था। माता अपने पुत्र को शक्ति-संपन्न देखना चाहती थी, पर पुत्र में महत्त्वाकांक्षा का स्थान ऊँचा न था। माता के बार-बार अनुरोध करने पर भी भवानीशंकर लखनऊ जाने पर राज़ी न हुआ।

पर होनी की बात! वही कानपुर, जिसे वह छोड़ न सकता था, उसको विष-तुल्य जँचने लगा। वह कानपुर छोड़ना चाहता था, और इस कमज़ोरी का अवसर पाकर लखनऊ का ऐश्वर्य उसे अपनी ओर आकर्षित करने लगा। जिस समय उसने अपनी माता से लखनऊ जाने का प्रस्ताव किया, उसकी माता के हर्ष का पारावार न रहा। शायद वह भवानी-शंकर की वास्तविक स्थिति को न जानती थी। जानती होती, तो उसे उस आनंद के साथ एक प्रकार की मनोवेदना भी होती।

जिस समय वह लखनऊ पहुँचा, उस समय उसके वे संबंधी, जो रिश्ते में उसके चाचा लगते थे, और जिनका नाम था मुंशी रामसहाय, अपने दरवाज़े पर बैठे हुए हुक़्क़ा गुड़गुड़ा रहे

थे। उनके कान पर क़लम खुसी हुई थी, और उनका चश्मा, जिस पर सुतली की कमानी चढ़ी हुई थी, उनके माथे को सुशोभित कर रहा था।

भवानीशंकर को देखते ही मुंशी रामसहाय बड़े तपाक से उठे। भवानीशंकर ने अपने चाचा को झुककर सलाम किया, और मुंशीजी ने भी 'खुश रहो' कहकर आशीर्वाद दिया। इसके बाद सवारियाँ उतारी गईं।

मुंशी रामसहाय कानपुर के ही रहनेवाले थे। भवानी-शंकर के बाबा ने मुंशी रामसहाय को पाला-पोसा था। भवानी-शंकर के पिता के साथ ही मुंशी रामसहाय ने शिक्षा पाई थी, और उन्हीं के प्रभाव से मुंशी रामसहाय को नवाब साहब के मुसाहिबों में जगह मिल गई।

मुंशी रामसहाय मिलनसार आदमी थे, उनके मिलनेवाले यह अच्छी तरह से जानते थे। मुंशीजी सहृदय भी यथेष्ट थे। मुंशीजी के मिलनेवाले उनकी फ़ैयाज़ी के क़ायल थे। मुंशीजी दो चीज़ों से प्रेम करते थे—एक तो शराब से और दूसरे अपने हुक़्क़े से।

मुंशीजी की आय काफ़ी थी। एक तो मुंशीजी नवाब वाजिदअली शाह के मुसाहिब थे, दूसरे उनके पास यथेष्ट ज़मींदारी थी। फिर मुंशीजी कायस्थ थे।

एक ज़माना था, जब कायस्थों का बड़ा मान था, और जब वे अमीर थे। कायस्थों का मस्तिष्क परमेश्वर ने स्वयं अपने

हाथ से बनाया था। उनके मस्तिष्क की तुलना किसी दूसरे का मस्तिष्क नहीं कर सकता था। ज़मीन-आसमान के क़ुलाबे मिलाना ही उनका काम था। वे बदनाम थे, और उनकी बदनामी के कारण भी थे। सहृदयता में वे पक्के होते थे। वे कमाते थे अपने लिये नहीं, वरन् अपने मित्रों के लिये। उनके ख़र्च भी अनाप-शनाप थे। जितनी उनकी बँधी हुई आय थी, उसका चौगुना उनका ख़र्च था। फिर वह ख़र्च आता कहाँ से था? प्रश्न यह था, और इसीलिये वे बदनाम थे।

'रिश्वत' शब्द बड़ा बुरा है, पर इसी शब्द पर कायस्थों को गर्व था। मुंशी रामसहाय जिस समय पुराने ज़माने के कायस्थों की बातें करने बैठ जाते थे, उठने का नाम तक न लेते थे। उनकी बातों में सुननेवालों को भी बड़ा आनंद मिलता था। उनकी कुछ बँधी हुई कहानियाँ थीं, शायद उनमें से एकआध हमारे पाठक भी सुनना चाहेंगे। कहानियाँ मज़ेदार हैं, इतना हम भी कह सकते हैं।

मुंशी रामसहाय के पुरखों में एक व्यक्ति बड़े महत्त्व के आदमी थे। उनका नाम था मुंशी इक़बालबहादुर। मुंशी इक़बालबहादुर दुर्भाग्य-वश अमीर न थे। पढ़े-लिखे वह काफ़ी थे, और दिमाग़ भी उनका ग़ज़ब का था। मुंशीजी किसी-न-किसी तरह शाहंशाह शाहजहाँ के दरबार में घुस गए। वहाँ उन्होंने अपनी प्रतिभा दिखाई। दो ही महीने में वह लखपती हो गए, और अगले दो महीनों में वह

करोड़पती बनने की सोच ही रहे थे कि मुसाहिबों की कोप-दृष्टि उन पर पड़ी। कुछ लोगों को उनसे ईर्ष्या हुई, बादशाह के पास उनकी रिश्वत-ख़ोरी की शिकायत की गई। फलतः बादशाह ने उन्हें ऐसी जगह भेजा, जहाँ उन्हें रिश्वत न मिल सके। वह बादशाह की घुड़साल की देख-भाल करने पर नियुक्त किए गए।

मुंशीजी दो-चार दिन तो शांत रहे, पर एक दिन उनको सूझी, और अच्छी सूझी। आपने साईसों को बुलवाया, उनके साथ आप घोड़ों का मुआइना करने गए। आपने घोड़ों की लीद को दाने की मात्रा से बहुत कम पाया। बस, फिर क्या, साईसों पर लंबे-लंबे जुरमाने कर दिए गए। इस प्रकार मुंशीजी की वहाँ भी पूजा होने लगी।

ख़बर बादशाह के कानों तक पहुँची। बादशाह ने इस बार मुंशीजी को समुद्र-तट पर भेज दिया। काम था समुद्र की लहरें गिनना। मुंशीजी को काम तो पसंद न था, पर करते ही क्या?

बरसात के दिन थे, पानी मूसलाधार बरस रहा था, और समुद्र की लहरें बड़ी भीषणता के साथ उठ रही थीं। मुंशीजी को शराब की याद आई। पर मुंशीजी के पास काफ़ी धन न था। मुंशीजी इस बार बड़ी मुसीबत में पड़े।

पर परमेश्वर ने अथवा यों कहिए कि मुंशीजी के आली दिमाग़ ने मुंशीजी की सहायता की। एक दिन माल-

असबाब से भरा हुआ एक जहाज़ आ रहा था। मुंशीजी को सूझ गई, वहीं से उन्होंने जहाज़ रोकने का हुक्म दिया। कारण यह था कि जहाज़ से समुद्र की लहरें टूट जाती थीं, और इस कारण मुंशीजी को लहरें गिनने में असुविधा होती थी। जहाज़वालों ने मुंशीजी की पूजा की, और फिर कहीं जहाज़ किनारे आने पाया।

मुंशी रामसहाय, जैसा हम पहले ही कह चुके हैं, शराब के विशेष प्रेमी थे। यार लोगों को भी मुंशीजी की वजह से बड़ा आराम था। शाम हुई कि यार लोग मुंशीजी की बैठक में एकत्र हो गए। फिर क्या था, मुंशीजी ने मिनकुआ के आगे दो रुपए फेंके, और मेवे की शराब की दो बोतलें लाने का हुक्म दिया। लेकिन मिनकुआ भी काफ़ी शौक़ीन था। अगर मुंशी रामसहाय एक बोतल पी सकते थे, तो मिनकुआ दो बोतलें पीने का दावा रखता था। पहले तो वह स्वयं ही पीता था। वह इस तरह कि आधी बोतल उसने रास्ते में ख़तम की, और फिर दोनों में पानी गड्ड-बड्ड करके वह बोतलें मुंशीजी के सामने रख देता था। पर आगे चलकर मिनकुआ के हौसले और बढ़े। अगर उसके मालिक के यार-दोस्त थे, तो उसके भी थे। अगर उसके मालिक अपने यार-दोस्तों की ख़ातिरें कर सकते थे, तो उसका फ़र्ज़ था कि वह भी अपने दोस्तों की ख़ातिर करे। बस। फिर उसने दो रुपए की चार बोतलें लाना आरंभ कर दिया। दो

मुंशी रामसहाय और मुंशी रामसहाय के दोस्त पीते थे, और दो मिनकुआ और उसके दोस्त।

अक्सर मुंशीजी और उनके दोस्त मज़े में आ जाते थे, और फिर आपस में वह जूता-लात चलता था कि मुहल्लेवालों को सोना हराम हो जाता था।

जिस दिन से भवानीशंकर ने मुंशी रामसहाय के घर में प्रवेश किया, उसी दिन से उनका मज़ा किरकिरा हो गया। कारण कि मुंशीजी के यहाँ स्त्रियाँ आ गईं, और मुंशीजी को मज़ा तब तक न आता था, जब तक गाली-गलौज और जूता-लात की नौबत न पहुँचती थी।

एक दिन मुंशी रामसहाय के साथ भवानीशंकर उनके बैठके में बैठा हुआ उनसे बातचीत कर रहा था। शाम हो गई थी, और मुंशीजी के यार-दोस्त एकत्र हो रहे थे। थोड़ी देर बाद एक फ़िटन मुंशीजी के दरवाज़े पर रुकी, और उससे एक आदमी उतरा। मुंशीजी ने उस मनुष्य को शायद नहीं पहचाना, पर वह मनुष्य मुंशी रामसहाय को अच्छी तरह से पहचानता था। उसने हँसकर मुंशीजी को सलाम किया। मुंशीजी ने भी सलाम का उत्तर दिया, पर वह उस समय मनुष्य को पहचानने का प्रयत्न कर रहे थे। उन्हें आभासित होता था कि उन्होंने उस मनुष्य को कहीं देखा अवश्य है, पर कब और कहाँ, यह उन्हें मुश्किल से याद आया।

एकाएक मुंशीजी को उस ज्योतिषी की याद आई। यद्यपि राधारमण इस समय बड़ी सादी पोशाक में था, और इस समय उसके मुख पर एक विचित्र परिवर्तन हो गया, जैसा कि वह अपने इच्छानुसार कर लिया करता था, तो भी दीवाने-ख़ास की घटना यथेष्ट महत्त्व की थी।

फिर क्या था, मुंशीजी ने लपककर माफ़ी माँगते हुए राधारमण का स्वागत किया। उसके बाद राधारमण को मुंशीजी अपनी बैठक में लिवा ले गए।

जिस समय बैठक में राधारमण ने प्रवेश किया, उस समय भवानीशंकर कुछ लोगों से बातचीत कर रहा था। राधारमण के कमरे में प्रवेश करने के साथ ही एकाएक बातचीत बंद हो गई, और सब लोगों की आँखें आगंतुक की ओर उठ गईं। भवानीशंकर राधारमण को देखते ही झिझक उठा।

भवानीशंकर को देखकर राधारमण मुस्किराया। उसने कहा—"कहो भवानीशंकर, अच्छी तरह से तो हो?"

मुंशी रामसहाय को और भी आश्चर्य हुआ। वह मनुष्य भवानीशंकर को पहचानता था।

भवानीशंकर ने उत्तर दिया—"हाँ प्रताप चाचा, अच्छी तरह से हूँ।"

मुंशी रामसहाय उछल पड़े—"अखवाह! भाई प्रतापसिंह

हैं।" लोगों की तरफ़ देखते हुए उन्होंने कहा—"दोस्तो! यह मेरे बचपन के लँगुटिया यार हैं; लेकिन, भाई प्रतापसिंह! मैं तो बुड्ढा हो गया हूँ, और तुम अभी नौजवान-के-नौजवान ही बने हो! ख़ैर, इससे कोई मतलब नहीं।" इतना कह-कर उन्होंने मिनकुआ को आवाज़ दी।

मिनकुआ आज उदास था। उसे भवानीशंकर का आना अखर गया था। भवानीशंकर के आने से उसके सुख में बाधा पड़ गई। न भवानीशंकर आता और न मुंशी रामसहाय अपनी शराब पीने की पुरानी आदत को छोड़ते, और न मिनकुआ को अपने मित्रों को हताश करना पड़ता।

मिनकुआ ने बड़े अनमने ढंग से बैठक में प्रवेश किया, और मुंशीजी ने मिनकुआ के सामने चार रुपए फेंक दिए—"देख बे, अच्छी-से-अच्छी मेवे की शराब की दो बोतलें लेता आ।"

मिनकुआ का मुख खिल उठा। लपककर उसने रुपए उठाए, और गद्दी की तरफ़ दौड़ा।

थोड़ी ही देर बाद मिनकुआ दो बोतलें ले आया, और मुंशीजी के बैठके में शराब का दौर लगा।

मुंशी रामसहाय आज सीमे में ही रहे। बातचीत में मुंशी रामसहाय ने प्रतापसिंह से कहा—भाई प्रतापसिंह, नवाब साहब पर तो तुम्हारा काफ़ी रुआब छा गया है। इस

लड़के को आप नवाब साहब के यहाँ किसी मुहकमे में करवा देते।"

प्रतापसिंह ने अपना मुख उठाया। उन्होंने कहा—"अच्छा, आप कल इनको मेरे यहाँ भेज दीजिएगा।"

इसके बाद प्रतापसिंह वहाँ से चला गया।

दूसरे दिन भवानीशंकर प्रतापसिंह के घर पहुँचा, द्वार पर ही प्रकाशचंद्र टहल रहा था।

प्रकाशचंद्र को लखनऊ में देखकर भवानीशंकर को आश्चर्य हुआ। प्रकाशचंद्र ने मुस्किराकर कहा—"क्यों भवानीशंकर, मैंने तुम्हारा कैसा पीछा किया?" ये वाक्य प्रकाशचंद्र ने बड़ी सरलता-पूर्वक कहे, और भवानीशंकर ने इसे उस समय तक एक मज़ाक़ ही समझा, जिस समय तक उसकी और सरस्वती की भेंट नहीं हुई।

भवानीशंकर प्रतापसिंह के कमरे में पहुँचा। प्रतापसिंह सोकर उठा था, उसकी आँखें लाल थीं और उसका मुख पीला। भवानीशंकर को उसने बड़े आदर-पूर्वक बिठलाया। इसके बाद वह नित्य-कर्म से निवृत्त होने चला गया।

थोड़ी देर तक बैठे रहने के बाद भवानीशंकर कमरे में टहलने लगा—उसी समय उसकी दृष्टि कमरे से मिले हुए सहन में पड़ी। द्वार पहले बंद था, पर प्रतापसिंह जब वहाँ से गया, उसने वे द्वार खुले ही छोड़ दिए।

उसकी दृष्टि एकाएक रुक गई, और जिस लक्ष्य पर उसकी दृष्टि रुकी, उसे देखकर वह झिझक उठा। भवानीशंकर चिल्ला उठा—"अरे सरस्वती ! तुम यहाँ कहाँ ?"

सरस्वती ने इशारे से उसे भीतर बुला लिया।

भवानीशंकर भीतर गया। सरस्वती उसका हाथ पकड़कर उसे अपने कमरे में लिवा ले गई।

भवानीशंकर ने प्रश्न किया—"सरस्वती, तुम यहाँ क्यों आई ?"

सरस्वती ने उत्तर दिया—भवानी बाबू, तुम यहाँ क्यों आए ?"

भवानीशंकर थोड़ी देर तक मौन रहा, उसके बाद उसने कहा—"मैं स्वयं अपने को और तुम्हें पतन से बचाने के लिये यहाँ आया था ?"

सरस्वती के पास मानो उत्तर तैयार था, उसने कहा—"शायद, पर हम दोनो गिर चुके हैं, पतन में अब क्या शेष है ? मैं अपने को और तुमको और भी नीचे गिराने आई हूँ।" इतना कहकर वह मुस्किराई। उसकी मुस्किराहट में कुछ वेदना के भी भाव छिपे थे।

भवानीशंकर निरुत्तर हो गया। उसने अपना हाथ सरस्वती के गले में डाल दिया। फिर उसने आरंभ किया—"सरस्वती, जो सोचा था, वह नहीं हो सका। परमेश्वर को यही मंजूर है, फिर यही सही। मिलने दो, हम दोनो रसातल में

पहुँच जायँ, इसकी कोई चिंता नहीं। पर साथ ही मेरी आत्मा को कुछ थोड़ा-सा दुःख अवश्य होता है।"

सरस्वती तड़प उठी—"क्या कहा भवानी बाबू, तुम्हारी आत्मा को दुःख होता है! उस समय तुम्हारी आत्मा को दुःख क्यों नहीं हुआ, जिस समय तुमने मुझे पाप के गहरे गढ़े में ढकेला था। मुझे नहीं मालूम था कि तुम मुझसे प्रेम नहीं करते, मुझे नहीं मालूम था कि तुम केवल मेरी सुंदरता के, मेरे यौवन के भूखे थे। मैंने तुमसे प्रेम किया; तुम लखनऊ आए, तो मैंने भी छाया की भाँति तुम्हारा पीछा किया, पर उस प्रेम का बदला यह मिला।" इतना कहते ही सरस्वती की आँखों में आँसू भर आए।

भवानीशंकर एक अपराधी की भाँति सिर झुकाए खड़ा था।

सरस्वती ने फिर आरंभ किया—"भवानी बाबू, तुम यहाँ से जाओ। अब मैं तुमसे प्रेम के बदले घृणा करने लगी हूँ। मेरे हृदय को नहीं जानते—जानते होते भवानी बाबू, तो तुम अपनी पाशविक तृष्णा को शांत करने के पहले कुछ सोच-समझ लेते। अब मैं तुम्हारे रक्त की प्यासी हो गई हूँ। तुम एकदम यहाँ से चले जाओ।"

उस समय सरस्वती की आँखें अंगारों की भाँति लाल थीं।

भवानीशंकर अवाक् खड़ा था। उसे सरस्वती के इस व्यव-

हार पर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसे सरस्वती से कुछ बोलने का साहस न हुआ। वह चला आया। उसी समय प्रतापसिंह भी नित्य कार्य से निवृत्त होकर आ गया।

प्रतापसिंह से भवानीशंकर की बातचीत आरंभ हुई। बीच ही में प्रतापसिंह ने कहा—"देखो, अब मैं प्रतापसिंह नहीं हूँ। मेरा नाम राधारमण है।"

थोड़ी देर तक मौन रहने के पश्चात् प्रतापसिंह ने कहना आरंभ किया—"तुम नवाब वाजिदअली शाह के दरबार में प्रवेश करना चाहते हो, और साथ-साथ प्रकाशचंद्र भी। अच्छा, कल शाम को फिर मिलना।" इतना कहकर प्रतापसिंह उठा और भीतर चला गया।

भवानीशंकर घर लौट गया।

दूसरे दिन संध्या के समय भवानीशंकर प्रतापसिंह के घर गया। घर पर सन्नाटा छाया हुआ था। भवानीशंकर ने प्रतापसिंह के घर में प्रवेश किया। उसी समय उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि पासवाले कमरे में दो व्यक्ति बातचीत कर रहे हैं। रात हो गई थी, भवानीशंकर की इच्छा हुई कि वह उस बातचीत को सुने। द्वार पर चोर की भाँति खड़े होकर वह बातचीत सुनने लगा।

वह चौंक उठा। उसका मुख पीला पड़ गया। उस कमरे में प्रतापसिंह और सरस्वती थे। प्रतापसिंह ने शराब का गिलास सरस्वती को दिया था, और पीने को कह रहा था।

सरस्वती ने उत्तर दिया—"अगर वह आ गए, और उन्होंने मुझे इस हालत में देख लिया, तो ?"

प्रतापसिंह ने उत्तर दिया—"नहीं, प्रकाशचंद्र आज बारह बजे तक नहीं लौट सकता।"

उसी समय सरस्वती गिलास की शराब खतम कर गई। इसके बाद और भी बातचीत हुई, भवानीशंकर उन्हें सुन न सका।

भवानीशंकर द्वार से लौट आया, बाहर से उसने आवाज़ दी—"पंडित राधारमणजी !"

थोड़ी देर बाद राधारमण घर के बाहर निकला। भवानी-शंकर को देखते ही उसका मुख पीला पड़ गया। उसने कहा—"इस समय आकर तुमने बुरा किया, पर तो भी एक अतिथि का सत्कार करना मेरे लिये आवश्यक है। आओ, बैठो।"

इतना कहकर उसने बैठक के द्वार खोले।

कुछ देर तक बैठने के बाद भवानीशंकर ने कहा—"मैं सरस्वती से मिलना चाहता हूँ।"

प्रतापसिंह कह उठा—"असंभव !"

भवानीशंकर को इस उत्तर की आशा थी, तब भी उसने आश्चर्य का भाव प्रकट करते हुए कहा—"असंभव! पर क्या मुझे इसका कारण ज्ञात हो सकता है ?"

प्रतापसिंह मुस्किराया—"वाह रे ढोंगी! कारण जानते

हुए भी तुम मुझसे कारण पूछना चाहते हो! अभी तुमने द्वार पर खड़े होकर हम लोगों की बातें सुनी हैं, और यहाँ पर तुम मेरे इस उत्तर पर आश्चर्य करते हो!" प्रतापसिंह का मुख गंभीर हो गया—"लड़के, कैसा भ्रम है। तू किससे प्रेम करता है? जिससे तू प्रेम करता है, वह एक हृदय-हीना स्त्री है। संभव है, कभी उसके हृदय रहा हो, पर अब वह इच्छा की ग़ुलाम है। जानता हूँ कि तूने उससे प्रेम किया, पर उसने तुझसे प्रेम नहीं किया। तुझको उसने अपने भोले-पन के ढोंग से झूठा प्रेम प्रदर्शित करके धर्म के मार्ग से गिराया। जिस समय तू उसके पास से चला गया, उसे दूसरे मनुष्य की आवश्यकता हुई। वह दूसरा मनुष्य मैं हूँ। तू स्त्री-चरित्र को समझने में असमर्थ है।"

प्रतापसिंह रुक गया। उसने फिर कहा—"जानते हो कि मैंने मकान के द्वार खुले छोड़ दिये थे? केवल तुम्हारे आने के लिये। मैं यह चाहता था, तुम जान जाओ कि जो कुछ तुमने किया, वह ठीक किया।"

भवानीशंकर की आँखों में आँसू भर आए। उसने कहा—"धन्यवाद!"

प्रतापसिंह ने कहा—"अभी नहीं, और सुनो। जानते हो, इस समय सरस्वती ने मुझसे क्या कहा था? उसने कहा था, भवानीशंकर को मिट्टी में मिला दो। वह जानती है कि मुझमें यह शक्ति है। पर भवानीशंकर, याद रखना कि

यद्यपि मैं शैतान के हाथ बिक चुका हूँ, तो भी मुझमें कुछ मनुष्यत्व है। समझे।"

भवानीशंकर ने अपना सिर उठाया—उसके मुख पर करुणा के भाव व्यक्त थे। उसने फिर कहा—"धन्यवाद।"

इसी समय प्रतापसिंह चौंक उठा—रणवीर ने उसके कमरे में प्रवेश किया।

प्रतापसिंह खड़ा हो गया। "क्यों आए?" उसने प्रश्न किया।

रणवीर का मुख पीला था, उसकी आँखें बंद-सी थीं! उसने धीरे से उत्तर दिया—"तुमसे कुछ बातचीत करते।" प्रतापसिंह ने कहा—"ठहरो, तुम्हारा मुख इस समय पीला क्यों है? तुम्हारा सारा शरीर क्यों काँप रहा है?" इतना कहकर वह रणवीर की ओर बढ़ा।

रणवीर कह उठा—"कोई बात नहीं। कई दिन से भोजन न करने के कारण यह अवस्था हुई है।"

"अच्छा, तो बैठो, मैं तुम्हें कुछ खाने को लाने जाता हूँ।" इतना कहकर प्रतापसिंह भीतर की ओर चला। प्रतापसिंह के मुख फेरने के साथ ही रणवीर उस पर टूट पड़ा। प्रतापसिंह को गिराकर वह उस पर चढ़ बैठा। और उसने अपनी कटार निकाल ली।

भवानीशंकर ने यह सब देखा और एक पल के लिये वह

अवाक् हो गया । पर शीघ्र ही उसने सारी घटना का महत्त्व समझ लिया । उसने लपककर रणवीर का हाथ पकड़ लिया । यदि भवानीशंकर न होता, तो प्रतापसिंह का काम तमाम हो गया होता ।

भवानीशंकर और प्रतापसिंह ने मिलकर रणवीर को नीचे गिरा दिया । इसके बाद प्रतापसिंह ने अपनी आँखें रणवीर पर गड़ा दीं । रणवीर काँपने लगा ।

प्रतापसिंह ने रणवीर की कटार छीन ली । कटार उसने रणवीर को मारने के लिये तानी । रणवीर काँप उठा । कटार उसके हाथ से छूट पड़ी । थोड़ी देर तक वह चुप रहा । शैतान रणवीर को मार डालने को कह रहा था, पर एक दूसरी वृत्ति उसे ऐसा करने से रोकती थी ।

हम कह चुके हैं कि प्रतापसिंह रणवीर से प्रेम करता था । इसी कारण वह रणवीर को मारने में असमर्थ था । जिस रणवीर को उसने अपनी गोद में खिलाया था, उसी रणवीर को वह मारे—यह उसके लिये असंभव था । फिर भी रणवीर उसका भयानक शत्रु था ।

प्रतापसिंह ने कटार उठाकर रणवीर के हाथ में दे दी । उसने धीरे से कहा—"लड़के, मुझको मारने आया था । ले, यह कटार ले, और मार डाल । देख, मैं अपने नेत्र बंद किए लेता हूँ, तू इन नेत्रों की शक्ति से मुक्त है ।" इतना कहकर उसने अपने नेत्र मूँद लिए ।

थोड़ी देर तक सन्नाटा छाया रहा। प्रतापसिंह ने फिर कहा—"रणवीर, क्या सोचते हो? मैंने तुम्हारे साथ बुराई की, मैंने तुम्हारे साथ विश्वासघात किया। तुम मुझसे घृणा करते हो, जानता हूँ। फिर अब क्या उपाय है? केवल यही कि तुम मुझे मार दो—संसार से एक पापी कम कर दो।"

प्रतापसिंह की आँखों में आँसू भर आए। रणवीर ने कटार अपने हाथ से फेंक दी। वह प्रतापसिंह से लिपट गया। उसने कहा—"भैया!"

प्रतापसिंह ने अपनी आँखें खोल दीं। वह उछल पड़ा। वह हँसने लगा। एक पागल की भाँति वह हँस रहा था। उसने कहा—"क्या कहा रणवीर? फिर उसी शब्द से मुझे संबोधित करो। तुम मुझसे घृणा नहीं करते। तुम केवल मुझे बहका रहे थे। तुमने मुझे मारने का केवल बहाना किया था, फिर तुममें तुम्हारा लड़कपन आ गया था।" प्रतापसिंह चुप हो गया।

थोड़ी देर बाद उसने फिर कहा—"तुम घर आए हो, भूखे हो, अभी तुमने खाना नहीं खाया। चलो, भोजन करो।"

भवानीशंकर ने उठकर प्रतापसिंह को अभिवादन किया, फिर वह अपने घर लौट गया।

छठा परिच्छेद

मुहम्मदयाक़ूब ने काम बड़े साहस का किया था, और सफलता पर उसे विश्वास था, पर चाल उलटी पड़ी। उस घर में ही शत्रु निकल आए। उसे गुलनार का ध्यान न था। वह निश्चिंत था, पर उसने भूल की थी। गुलनार का एक रिश्तेदार था, उसका नाम था बंदेहसन। बंदेहसन नवयुवक था, और गुलनार की मौसी का लड़का था।

बंदेहसन मुहम्मदयाक़ूब का आश्रित था। वह लड़का था—और शायद वह कुरूप भी था। आश्रितों का सदा अपमान हुआ करता है। बंदेहसन का भी अपमान होता था। एक तरह से बंदेहसन मुहम्मदयाक़ूब का नौकर था। बंदेहसन अनाथ था। उसके पिता का देहांत, जब वह सोलह वर्ष का था, हो गया था। छ महीने बाद उसकी माता का भी देहांत हो गया था। इसके बाद वह अपनी मौसी के यहाँ ही रहने लगा।

बंदेहसन के पिता शायर थे। पिता का वह अंश बंदेहसन में भी आ गया था। एकांत में बैठकर वह कविता किया करता था। लिखकर वह, अपने शेर ख़ुद पढ़ता था, और फिर फाड़ डालता था। इसका कारण था।

मुहम्मदयाक़ूब ने एक दिन उसके काग़ज़ पर लिखे हुए वे अशार देख लिए—देखते ही वह आग हो गया। बंदेहसन पर इतनी मार पड़ी कि आँबा हल्दी लगाने की नौबत आई। ऊपर से बड़ी बेगम साहबा का ताना—"शायर बनने चला! दूसरों का ग़ुलाम होकर शायरी करेगा।" बंदेहसन के चारो ओर अंधकार था।

पर एक ओर से उसे एक प्रकार की ज्योति दिखलाई पड़ी। ज्योति गुलनार की ओर से थी। गुलनार सहृदय थी। बंदेहसन ने उसे अपनी गोद में खिलाया था। जिस समय बंदेहसन अपनी मौसी के यहाँ आया था, उस समय गुलनार की अवस्था प्रायः तीन वर्ष की थी। बंदेहसन को देखकर वह हँस पड़ी थी, और बंदेहसन ने बढ़कर उसे गोद में उठा लिया था। उस दिन से उन दो प्राणियों का साथ हुआ था। गुलनार शोख़ थी ज़रूर, पर बंदेहसन से उसका स्नेह हो गया था। लड़कपन में वह घंटों बंदेहसन से बातचीत करती थी।

एक दिन परोस में एक लड़की का विवाह हुआ था, गुलनार उस समय बंदेहसन के पास बैठी थी। उसने कहा—"मैं दुलहिन बनूँदी, अच्छे-अच्छे कपले पहिलूँदी, जब मैं जाऊँदी, तो लोऊँदी—ऊँ ऊँ ऊँ।" इतना कहकर गुलनार हँस पड़ी। बंदेहसन भी हँस पड़ा। उसने कहा—"ठीक है।"

गुलनार ने फिर कहा—"लेतिन दुलहा तौन बनेदा? तुम

दुलहा बनना। बनोगे न ?" गुलनार उस समय गंभीर थी—वह केवल एक बालिका थी।

बंदेहसन अभी तक गुलनार की बातों पर हँस रहा था, पर एकाएक वह गंभीर हो गया। उसने गुलनार से ये शब्द कहे—"तुम अमीर हो, मैं ग़रीब हूँ, तुम सुंदर हो, मैं कुरूप हूँ। तुम्हारी और मेरी अवस्था में बड़ा भेद है!" इसके बाद उसने धीरे से कहा—"असंभव है—असंभव!" और उसकी आँखों से दो आँसू गिर पड़े।

दोनो एक दूसरे को चाहते थे। एक फूल था, दूसरा काँटा। दोनो में मैत्री थी—और मैत्री किसी अंश तक अस्वाभाविक थी। कभी-कभी गुलनार कहती थी—"बंदेहसन, दुनिया में मैं तुम्हें सबसे ज्यादा प्यार करती हूँ।" और गुलनार ये शब्द गंभीरता-पूर्वक कहती थी। बंदेहसन उन शब्दों को सुनकर हँस पड़ता था, फिर वह गंभीर होकर कहता था—"शायद! लेकिन एक दिन तुम किसी को मुझसे ज्यादा चाहने लगोगी।" दोनो बढ़ने लगे। एक लाड़-प्यार में और दूसरा घृणा में।

गुलनार अपने मन की बात बंदेहसन से कह देती थी, बंदेहसन उसकी सहायता किया करता था। गुलनार को अच्छे-अच्छे पदार्थ खाने को मिलते थे। वह उनमें का कुछ थोड़ा-सा अंश बंदेहसन के लिये बचा रखती थी, फिर एकांत में वह उन्हें बंदेहसन को दे देती थी। बंदेहसन उन्हें लेकर रख लेता था। और गुलनार के चले जाने के बाद वह उन्हें

अपनी संदूक़ में रख लेता था। वह उन्हें खाता न था, गुलनार की सौग़ात को वह बड़े आदर तथा भक्ति-भाव से अपने पास एकत्र करता था।

बंदेहसन, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, आश्रित था। कभी-कभी मुहम्मदयाक़ूब दो-एक पैसे उसे दे देते थे, और बंदेहसन उन्हें एकत्र करता था। एकत्र करके वह गुल-नार के वास्ते खिलौने ला देता था। गुलनार खिलौने पाकर ख़ुशी से फूल जाती थी। उस समय बंदेहसन को बड़ा सुख होता था—उसकी आँखों में आँसू भर आते थे। दोनो बैठ-कर उन खिलौनों से खेलते थे।

धीरे-धीरे गुलनार ने यौवन-काल में पदार्पण किया। बंदेहसन ने गुलनार में परिवर्तन देखा। बंदेहसन गुलनार से भरसक अलग रहने का प्रयत्न करने लगा, पर गुलनार के भावों में परिवर्तन न हुआ। वह बराबर बंदेहसन से पुराना बर्ताव करती रही।

बंदेहसन के व्यवहार में यथेष्ट परिवर्तन हुआ। पहले वह गुलनार के लिये खिलौने लाया करता था, अब वह उसके लिये इत्र, तैल इत्यादि लाने लगा। अब गुलनार एक प्रकार से घर की मालकिन हो गई। बंदेहसन को थोड़ी-सी ख़ुशी हुई, पर उसे दुःख भी हुआ। दुःख इसलिये कि बंदेहसन को अब गुलनार के जूठे टुकड़े न मिलते थे। वह गुलनार का घोड़ा भी न बनता था।

जिन दिनों राधारमण का गुलनार के घर में प्रवेश हुआ, बंदेहसन लखनऊ में न था । जब वह लखनऊ आया, उसने गुलनार में एक विचित्र परिवर्तन देखा । वह उस परिवर्तन का कारण न समझ सका । गुलनार उससे मिली अवश्य, पर वह कुछ अनमनी थी । बंदेहसन ने कारण पूछा, पर गुलनार ने उसे टाल दिया । बंदेहसन को हार्दिक वेदना हुई ।

गुलनार बंदेहसन से फिर मिली । बंदेहसन उदास था । गुलनार मुस्किराई, बंदेहसन भी मुस्किराया । पर दोनो की मुस्किराहट रूखी थी । गुलनार ने आते ही बंदेहसन के गले में हाथ डाल दिया । बंदेहसन चौंक पड़ा । बंदेहसन ने फिर पूछा—"गुलनार, तुम उदास क्यों हो ?" गुलनार हँस पड़ी । उसने कहा—"मैं कहाँ उदास हूँ !"

बंदेहसन ने अपना सिर हिलाया—"नहीं गुलनार, तुम मुझे धोखा नहीं दे सकतीं । तुम उदास अवश्य हो ।" गुलनार ने अपने भावों को दबाते हुए पूछा—"और तुम क्यों उदास हो ?"

बंदेहसन की आँखों में आँसू भर आए । उसने कहा—"इसलिये कि तुम उदास हो, और इसलिये कि तुम मुझसे आज अपनी बातें छिपा रही हो ।"

गुलनार की आँखों में आँसू भर आए । उसने कहा—"तो क्या तुम मेरे उदास होने की वजह जानना चाहते हो ?"

बंदेहसन ने अपनी साँस रोककर कहा—"हाँ ।"

गुलनार ने बंदेहसन का हाथ पकड़ लिया—"लेकिन, क्या वादा करते हो कि तुम जैसा मैं कहूँ, करोगे ?"

बंदेहसन ने मुस्किराकर कहा—"अगर करने लायक़ काम होगा, तो मैं करूँगा।"

गुलनार बोल उठी—"नहीं। या तो 'हाँ' कहो या 'न'।"

बंदेहसन ने फिर मुस्किराते हुए कहा—"यह तो मैं नहीं कह सकता।"

गुलनार कह उठी—"तो फिर तुम मेरे उदास होने की वजह भी नहीं जान सकते।" इतना कहकर गुलनार वहाँ से चलने को उद्यत हुई। बंदेहसन ने गुलनार का हाथ पकड़ लिया।

"नहीं गुलनार, तुम नहीं जा सकतीं। मैं वादा करता हूँ कि जैसा तुम कहोगी, वैसा ही मैं करूँगा।"

गुलनार की आँखें प्रसन्नता से चमक उठीं। उसने बंदेहसन की ओर बड़ी कृतज्ञ दृष्टि से देखा। बंदेहसन उस दृष्टि से काँप उठा। उसने फिर कहा—"अच्छा, बोलो, क्या करूँ ?"

गुलनार ने आरंभ किया—"क़ैदख़ाना जानते हो ?"

बंदेहसन—"हाँ।"

"और उसमें क़ैदी बंद करने के ढंग ?"

"हाँ।"

"उसमें एक शख़्स क़ैद है। बंदेहसन, मैं उस शख़्स से मुहब्बत करती हूँ।"

बंदेहसन का मुख पीला पड़ गया। वह चुप खड़ा था।

गुलनार कहती गई—"वैसा खूबसूरत शख्स मैंने कभी अपनी ज़िंदगी में नहीं देखा। बंदेहसन, मैं उससे मुहब्बत करती हूँ।" बंदेहसन का शरीर पसीने से तर हो गया। लड़खड़ाते हुए स्वर में उसने कहा—"तो फिर ?"

गुलनार ने कहा—"हाँ, मैं उस शख्स को क़ैदख़ाने से छुड़ाना चाहती हूँ, लेकिन क़ैदख़ाना खोलना मैं नहीं जानती। तुम जानते हो, मेरी मदद करो बंदेहसन!" इतना कहकर गुलनार रोने लगी।

बंदेहसन का सिर चक्कर खाने लगा। उसने अपने को सँभाला। अपने को सँभालकर उसने कहा—"यह मेरे लिये ग़ैरमुमकिन है!" और तीर की भाँति वह गुलनार के सामने से चला गया।

गुलनार का मुख पीला पड़ गया। उसे बंदेहसन से इस व्यवहार की आशा न थी। थोड़ी देर तक वह वहाँ खड़ी रही। उस समय उसके नेत्र शून्य की ओर देख रहे थे, उसकी आँखों में आँसू छलक आए थे। वह कुछ सोच रही थी। उसके बाल्यकाल के साथी ने उसको निराश किया—वह संसार से खिन्न हो गई।

गुलनार लौट आई।

एक नियम है—और वह नियम बड़ा साधारण है कि निराशा मनुष्य को साहसी बना देती है। आशा मनुष्य

को सताती है, निराशा उसका दुःखों से उद्धार करती है। आशा पर ही अवलंबित रहकर मनुष्य नीचे गिरता है। जीवन को साधे रखनेवाली वस्तु आशा है, और जीवन एक दुःखों का संग्रह है।

गुलनार बंदेहसन से अपना काम न निकाल सकी, पर वह निराश नहीं हुई। उसके सामने एक कर्तव्य था, और वह राधारमण को मुक्त करना। बंदेहसन ने उससे इस काम के करने से इनकार कर दिया, गुलनार बंदेहसन को अपना शत्रु समझने लगी। एक क्षण में आवेश के वशीभूत होकर वह बंदेहसन के वास्तविक रूप को भूल गई। और बंदेहसन?

बंदेहसन प्रेम करता था। किससे? गुलनार से।

बंदेहसन का जीवन करुणा का एक समुद्र था—गुलनार वह हवा थी, जो उसमें कभी-कभी हलचल मचा देती थी। वह समाज का एक दूषित अंग था। क्यों? क्योंकि परमेश्वर ने उसे ऐसा बनाया था। बंदेहसन को अपने धर्म पर विश्वास था, पर कभी-कभी उसके हृदय में ऐसे प्रश्न उठते थे कि बंदेहसन को धर्म से अश्रद्धा हो उठती थी। बंदेहसन बदसूरत था—वह निर्धन था। फिर भी वह गुलनार से प्रेम करता था। परमेश्वर ने उसके साथ अन्याय किया। दूसरे मनुष्यों को उसने ख़ूबसूरती दी, धन दिया, और सुख दिया—बंदेहसन को उसने यह सब क्यों नहीं दिया? यदि उसने उसको यह सब नहीं दिया, तो उसने गुलनार को उसके

मार्ग पर क्यों ला दिया ? और, यदि गुलनार को उसने उसके मार्ग पर ला दिया, तो गुलनार अन्य व्यक्तियों की भाँति उससे घृणा न करके उससे सहानुभूति क्यों रखती थी ?

ये प्रश्न थे—और बंदेहसन को इन प्रश्नों के उत्तर नहीं मिलते थे।

बंदेहसन संसार से घृणा करता था, क्योंकि संसार उससे घृणा करता था। संसार में केवल एक वस्तु थी, जो उसे प्यारी थी, वह गुलनार थी।

बंदेहसन, हम पहले कह चुके हैं, प्रायः दुःखित रहता था। उसका चारों ओर निरादर होता था। केवल गुलनार उसे प्यार करती थी। पर बंदेहसन की यह धारणा भी झूठी हो गई। गुलनार और बंदेसहन को एक तीसरे व्यक्ति ने अलग कर दिया। बंदेहसन स्वभावतः उस तीसरे व्यक्ति से घृणा करने लगा। वह तीसरा व्यक्ति बंदेहसन का शत्रु हो गया। उसने पहले सोचा कि गुलनार की सब कथा मुहम्मदयाक़ूब से कह दी जाय, पर एकाएक परिणाम उसके नेत्रों के आगे आ गया। परिणाम क्या होगा, यह तो वह ठीक-ठीक निर्णय न कर सका, पर इतना अवश्य निश्चय था कि परिणाम भयानक होगा और शायद गुलनार के लिये ही।

बंदेहसन के लिये यह असह्य था। उसे फिर इस बात पर सोचने का साहस न हुआ।

तो फिर बंदेहसन क्या करे, प्रश्न यह था। गुलनार

के सामने से वह एकाएक चला गया। वह अपने हृदय की कमज़ोरी जानता था। गुलनार के सम्मुख रहकर शायद उसके भाव बदल जायँ, वह यह नहीं चाहता था।

उस दिन गुलनार और बंदेहसन में कोई बातचीत नहीं हुई। गुलनार बंदेहसन के पास नहीं आई। रोज़ की भाँति उसने बंदेहसन से बातचीत भी नहीं की। बंदेहसन का साहस नहीं हुआ कि वह स्वयं गुलनार से बातचीत करे। पर उसके हृदय में बड़ी हलचल मची हुई थी। उसे गुलनार पर क्रोध आया। थोड़ी देर के बाद उसे गुलनार के स्थान पर अपने ही ऊपर क्रोध आने लगा। कई बार उसने दूर से गुलनार को देखा—उसके बाद वह चला गया।

दिन बीत गया, और रात्रि बीत गई। बंदेहसन की हृदय-वेदना बढ़ती ही गई। गुलनार उदास थी। बंदेहसन भी उदास था। एकाएक बंदेहसन के हृदय में यह प्रश्न उठा—"अगर मैं उस मनुष्य को मुक्त कर दूँ?" आगे सोचने का उससे साहस न हुआ, उसके दिमाग़ में चक्कर आ गया, उसकी आँखों में अँधेरा छा गया।

बंदेहसन ने निश्चय कर लिया। वह क़ैदख़ाने की कोठरी के सामने पहुँचा। राधारमण उस समय लेटा हुआ था। बंदेहसन ने उसे जगाया। राधारमण खड़ा हो गया। बंदेहसन ने पूछा—"तुम कौन हो?"

राधारमण ने मुस्किराते हुए उत्तर दिया—मैं आदमी हूँ।"

बंदेहसन चौंक उठा। उसे राधारमण के इस व्यवहार पर आश्चर्य हुआ। उसने कहा—"क्या तुम छूटना चाहते हो?" राधारमण हँस पड़ा। हँसते हुए उत्तर दिया—"क्यों नहीं।"

बंदेहसन ने गंभीरता-पूर्वक उत्तर दिया—"मैं तुम्हें यहाँ से छुटकारा दिला सकता हूँ, लेकिन एक शर्त पर।"

राधारमण कह उठा—"वह शर्त?"

बंदेहसन ने कहा—"वह शर्त यह है कि तुम फिर कभी इस घर में न आना।"

राधारमण ने मुस्किराते हुए कहा—"शर्त तो बड़ी कड़ी है, लेकिन फिर भी मैं मंज़ूर करता हूँ।"

बंदेहसन संतुष्ट हो गया। उसने कहा—"अच्छा, दोपहर के वक्त मैं क़ैदख़ाने के फाटक खोल दूँगा, फिर तुम एक मिनट यहाँ न ठहरना।" इतना कहकर वह वहाँ से चला गया।

गुलनार, जैसा हम कह चुके हैं, निराश नहीं हुई थी। उसे बंदेहसन से बड़ी आशाएँ थीं। यद्यपि बंदेहसन ने गुलनार से राधारमण को छुड़ाने के लिये इनकार कर दिया, गुलनार हताश नहीं हुई। उसने सोचा कि यदि एक-आध दिन वह बंदेहसन से न बोले, तो बंदेहसन स्वयं उसके पास आवेगा, और उससे अपने कटु व्यवहार के लिये क्षमा माँगेगा। गुलनार की धारणा किसी अंश तक ठीक भी थी।

एक दिन-रात के बाद भी जब बंदेहसन उसके पास नहीं

आया, तब गुलनार बेचैन हो उठी। उसे सामने अंधकार दिखाई देने लगा। सुबह आई और बीत गई, पर बंदेहसन उसके पास न आया। अब गुलनार ने बंदेहसन के पास स्वयं जाने का निश्चय किया। किस प्रकार वह रोवेगी, बंदेहसन के गले में हाथ डालकर उससे आरज़ू-मिन्नत करेगी, यह सब उसने पहले ही से सोच लिया।

दोपहर के समय गुलनार बंदेहसन के कमरे की ओर चली। उस समय उसका हृदय धड़क रहा था, पर बंदेहसन अपने कमरे में न था। गुलनार थोड़ी देर तक खड़ी रही, फिर वह लौटी।

एकाएक वह चौंक उठी—शायद उसको भ्रम हुआ।

जिस जगह वह खड़ी थी, वहाँ से क़ैदख़ाने की कोठरी नज़दीक थी। एक झनझनाहट की आवाज़ हुई, और आवाज़ उसी कोठरी से आई हुई मालूम होती थी। गुलनार शीघ्रता-पूर्वक उस कोठरी की ओर बढ़ी। जो कुछ उसने वहाँ देखा, उससे उसका आश्चर्य द्विगुणित हो गया। कोठरी का दरवाज़ा खुला हुआ था, और राधारमण वहाँ से बाहर निकल रहा था। प्रसन्नता से गुलनार उछल पड़ी—राधारमण का ध्यान उस ओर आकर्षित हो गया।

वह गुलनार की ओर बढ़ा—"गुलनार, मैं जाता हूँ।" गुलनार कह उठी—"मुझे छोड़कर!"

राधारमण चौंक उठा। उसने थोड़ी देर तक मौन रहकर कहा—"नहीं, तुम मेरे साथ चलोगी।"

इसी समय बंदेहसन उस स्थान पर आ गया। गुलनार और राधारमण को खड़ा देखकर उसका मुख पीला पड़ गया। गुलनार भी काँप उठी। राधारमण ने बंदेहसन से कहा—"धन्यवाद! मैं गुलनार के साथ जा रहा हूँ।"

बंदेहसन के मुख का भाव कर्कश हो उठा। मुट्ठी बाँधते हुए उसने कहा—"काफ़िर! क्या कहा? मैं अभी तुझे कुत्तों से नुचवाए डालता हूँ।" इतना कहकर वह राधारमण की ओर बढ़ा।

बंदेहसन में असाधारण बल था। गुलनार बंदेहसन को क्रोधित देखकर सिहर उठी। वह राधारमण और बंदेहसन के बीच में आ गई। बंदेहसन रुक गया।

राधारमण गंभीर हो गया। उसने अपनी आँखें बंदेहसन पर गड़ा दीं—"चुप रहो, तुम नहीं जानते कि तुम किससे बातें कर रहे हो। तुमने मुझे यहाँ से छुड़ाया है, इसलिये मैं तुम्हें मुआफ़ किए देता हूँ। लेकिन तुम एक घंटे तक इसी तरह यहाँ पर खड़े रहोगे। तुम हिल नहीं सकते, न तुम बोल ही सकते हो।"

बंदेहसन ने चिल्लाने को मुख खोला, पर उसका मुख न खुला। इस बार वह क्रोध से पागल हो उठा। एक काफ़िर उसके सामने उस की निधि लिए जा रहा है, बंदेहसन के लिये यह असह्य था। उसने राधारमण को

मारने के लिये पैर उठाए, पर पैर न उठे । वह अपने दाँत पीसने लगा—थोड़ी देर में वह बेहोश हो गया ।

राधारमण ने गुलनार से कहा—"चलो ।"

"अपना बुरक़ा तो ले लूँ ।" यह कहकर गुलनार चली गई ।

बुरक़ा लेकर गुलनार लौट आई । राधारमण के साथ वह अपने घर के बाहर निकली । अंधी होकर वह अपने अंत तथा पतन की ओर बढ़ने लगी । राधारमण मुस्किराया । उसने धीरे से यह वाक्य कहे—"यह मेरे बदले का पहला पग है—देखो, अभी मैं और क्या करता हूँ ।" इतना कहकर गुलनार के साथ राधारमण लखनऊ के जन-समुदाय में विलीन हो गया ।

बंदेहसन घंटे-भर तक उसी अवस्था में खड़ा रहा । जिस समय उसकी आँखें खुलीं, उस समय उसके सिर में दर्द हो रहा था, और वह पसीने से डूबा हुआ था । उसको यह न मालूम था कि वह कहाँ है । अपने को उस स्थान पर खड़ा देखकर उसे आश्चर्य हुआ । धीरे-धीरे उसके सामने सारी घटनाएँ आ गईं, पर वह उन्हें समझ न सका । ज्यों ही वह उन पर विचार करने लगता था, उसका सिर घूम उठता था ।

इसी अवस्था में वह अपने कमरे में गया । उसने एक गिलास पानी पिया, सिर का दर्द कम हुआ और चेतना-शक्ति पूरी तरह से आ गई । एकदम वह चिल्ला उठा—"गुलनार ! गुलनार !" और उसकी आँखें नाचने लगीं । एक क्षण में उसे

मालूम हो गया कि क्या हुआ। वह सीधे हरम पहुँचा, पर गुलनार वहाँ न थी। बंदेहसन के पैर के नीचे से पृथ्वी खिसक गई। बंदेहसन थोड़ी देर तक खड़ा रहा, इसके बाद वह तीर की भाँति बाहर निकला। वह नहीं जानता था कि गुलनार कहाँ गई, फिर भी उसने गुलनार का पता लगाना निश्चय किया। जिस समय वह घर के बाहर निकला, उस समय उसके नेत्र लाल थे, उसके मुख पर कर्कशता के भाव थे और उसके साथ में एक कटार।

मुहम्मदयाक़ूब उस समय आराम कर रहे थे। जिस समय वह सोकर उठे, उन्होंने गुलनार को बुलवाया, पर गुलनार का पता न था। गुलनार की धाय गुलनार को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते बंदेहसन के कमरे में जा पहुँची। बंदेहसन भी वहाँ न था। सूचना मुहम्मदयाक़ूब को मिली। मुहम्मदयाक़ूब इस सूचना को पाकर अवाक् रह गए। उनकी समझ में कुछ न आया। शांत होने पर उन्होंने अपने नौकरों को शहर में भेजा।

नौकर लौट आए, गुलनार का कहीं भी पता न था। मुहम्मदयाक़ूब के घर में हाहाकार मच गया। "क्या बंदेहसन और गुलनार के साथ कुछ अनुचित संबंध था?" प्रश्न यह था। पर इस बात पर किसी को विश्वास न था।

मुहम्मदयाक़ूब अपने बग़ीचे में घूमने निकले, एकाएक उनकी नज़र क़ैदख़ाने की कोठरी पर पड़ी। उन्होंने देखा कि उसके द्वार खुले हुए हैं—वह काँप उठे! रहस्य उनकी समझ

में आने लगा। उनकी पुत्री ने ही उनके साथ विश्वासघात किया! वह पागलों की भाँति चिल्ला उठे—"जो गुलनार और उस ज्योतिषी का सिर मेरे पास लावेगा, उसको दस हज़ार रुपए इनाम!"

नौकर पास खड़े थे। वे इस लोभ का संवरण नहीं कर सकते थे, पर साथ ही वे राधारमण की शक्ति से भली भाँति परिचित थे। राधारमण का सिर लाने की प्रतिज्ञा करना अपने सिर को खोना था, वे टस से मस भी नहीं हुए।

मुहम्मदयाक़ूब चिल्ला उठे—"बुज़दिलो! तुम यह काम नहीं कर सकते! मैं जाता हूँ, और साथ में तुम सबों को बरख़ास्त करता हूँ।" इतना कहकर मुहम्मदयाक़ूब स्वयं अपनी कन्या तथा राधारमण की हत्या करने के लिये निकल पड़े।

सातवाँ परिच्छेद

बंदेहसन घृणा करने लगा था। किससे? गुलनार के प्रेमी राधारमण से।

बंदेहसन अभागा था, वह यह जान गया था। उसने अपनी निधि स्वयं अपने हाथों एक अपरिचित मनुष्य के हाथों सौंप दी, इसका उसे दुःख था, और साथ ही इसका भी कि उसने मुहम्मदयाक़ूब के साथ विश्वासघात किया।

कहा जाता है कि शत्रुता के तीन कारण होते हैं—'ज़र, ज़मीन और ज़न' और बंदेहसन राधारमण का शत्रु था। जिस बालिका को बंदेहसन ने उसके बाल्यकाल से पाला, अपनी कन्या की भाँति नहीं; वरन् अपनी प्रेमिका की भाँति, वही बालिका बंदेहसन को छोड़कर एक अपरिचित मनुष्य के साथ चली गई। गुलनार के इस बर्ताव पर उसे आश्चर्य हुआ और उससे अधिक दुःख।

पर बंदेहसन गुलनार से अब भी प्रेम करता था। गुलनार ने बंदेहसन से सहानुभूति दिखलाई। क्या वह सहानुभूति का पात्र था? नहीं, वह केवल गुलनार की दया थी। क्या बंदेहसन को कोई अधिकार था कि वह गुलनार को किसी

दूसरे से प्रेम न करने दे ? नहीं, बंदेहसन केवल स्वयं ही गुलनार से प्रेम कर सकता था। उसका गुलनार से अपने प्रेम का बदला उसके प्रेम से पाने की आशा करना उसके लिये सर्वथा अनुचित था। फिर बंदेहसन राधारमण का शत्रु क्यों हो गया, प्रश्न यह था।

मस्तिष्क और हृदय में भेद होते हैं। तर्कणा-शक्ति का भावों तथा हृदयोद्गारों से कोई संबंध नहीं। मनुष्य में एक कमज़ोरी होती है, वह यह कि वह तर्कणा-शक्ति की हृदयोद्गारों के सामने उपेक्षा करता है। हम जानते हैं कि हमें प्रेम के बदले प्रेम की आशा न करनी चाहिए। फिर भी यदि वह व्यक्ति, जिससे हम प्रेम करते हैं, जब हमारे प्रेम की उपेक्षा करता है, हमें क्रोध होता है—दुःख होता है। दुःखी होना किसी अंश तक क्षम्य है, क्योंकि उससे स्वयं का ही संबंध है। पर क्रोध करना पाप है, क्योंकि उसका संबंध बहिर्जगत् से है।

एक और मज़ेदार बात है, वह यह कि जब एक मनुष्य जान जाता है कि वह व्यक्ति, जिससे वह प्रेम करता है, एक दूसरे से प्रेम करता है, वह उस दूसरे मनुष्य से घृणा करने लगता है। इस स्थान पर मनुष्य की घृणा उसकी पाशविक वृत्ति पर आधारित रहती है, जो तर्क की सदा उपेक्षा करती है। दूसरे मनुष्य को प्रेम करने और प्रेम पाने का उतना ही अधिकार है, जितना हमें। सब यह

जानते हैं, फिर भी रोज़ हम एक व्यक्ति के दो प्रेमियों में शत्रुता देखते हैं। ऐसे स्थान में तर्क लोप हो जाता है ।

बंदेहसन तर्क का बड़ा पक्षपाती था, इसीलिये उसमें कट्टरता अधिक न थी। फिर भी इस अवसर पर तर्क ने उसका साथ न दिया। एक अपरिचित व्यक्ति को क्या अधिकार कि वह गुलनार से प्रेम करे, जब वह अपरिचित व्यक्ति हिंदू है। उसे राधारमण पर क्रोध था, क्योंकि उसने गुलनार को उससे छीन लिया था। बंदेहसन राधारमण के रक्त का प्यासा था।

पर उसे मालूम हो गया था कि उसका शत्रु उससे कहीं अधिक भयानक है। वह मुस्किराया। फिर भी उसकी रक्त-पिपासा उससे न गई। वह राधारमण को मारने पर तुला हुआ था।

बंदेहसन जिस समय घर के बाहर निकला, संध्या हो चली थी। उसे राधारमण के रहने का स्थान नहीं मालूम था, फिर भी वह एक दीवाने की भाँति लखनऊ की गलियों के चक्कर लगाने लगा। रात्रि हुई, और वह एक मसजिद में जाकर सो रहा। उसे घर लौटने का साहस नहीं हुआ।

प्रातः हुआ और बंदेहसन फिर चल पड़ा। लखनऊ की एक-एक गली के उसने चार-चार चक्कर किए, फिर भी उसने घूमना बंद नहीं किया। पागलों की भाँति बिना कुछ सोचे-समझे वह लखनऊ के चक्कर लगा रहा था। एकाएक वह रुक गया,

और रुककर वह आँखें फाड़-फाड़कर एक व्यक्ति की ओर देखने लगा। राधारमण उस समय नवाब साहब के यहाँ से आ रहा था।

पहले तो बंदेहसन ने राधारमण को रोकना चाहा, पर उसकी शक्ति का स्मरण करते ही बंदेहसन सिहर उठा। एक दम उसका हाथ उसके छुरे की मूठ पर पहुँचा, और दबे पैरों वह राधारमण की ओर बढ़ा। चोर की भाँति वह चल रहा था। थोड़ी-सी आवाज़ पर चौंक उठता था, मानो लोग उसके भाव को समझ गए हैं। उसे मालूम होने लगा कि मानो जन-समुदाय उसकी ओर आँखें फाड़-फाड़कर देख रहा है। उसके मस्तक से पसीना बहने लगा, और उसके पैर काँपने लगे। फिर भी उसने अपना साहस न छोड़ा।

वह और आगे बढ़ा। इस बार उसने साहस किया। वह अपने ध्यान में मग्न हो गया। उसने जन-समुदाय की उपेक्षा करने ही में अपनी भलाई समझी। वह राधारमण के पास पहुँच गया। राधारमण के पास पहुँचते ही उसका हृदय धड़कने लगा। उसमें साहस न हुआ कि वह अपना काम पूरा करे।

उसके हृदय में एक बात आई। क्या राधारमण को इस समय मारना उचित होगा? नहीं। क्यों नहीं। इसीलिये कि राधारमण की मृत्यु से गुलनार का पता लगाना कठिन हो जायगा। इसीलिये राधारमण को उसने उस समय छोड़ दिया,

पर उसने राधारमण का पीछा न छोड़ा। वह राधारमण के कुछ पीछे होकर उसके साथ-साथ चलने लगा। राधारमण ने उसको देखा या नहीं, यह तो नहीं मालूम, पर राधारमण मुस्किराया।

राधारमण अपने घर के पास जाकर रुका। उसने आवाज़ दी—"रणवीर !" रणवीर ने आकर द्वार खोल दिए। राधारमण ने घर में प्रवेश किया। बंदेहसन द्वार पर जाकर रुका। रुककर वह सोचने लगा—"क्या घर में प्रवेश करना उचित होगा ?"

बंदेहसन द्वार पर खड़ा रहा। घर में प्रवेश करने का उसे साहस न हुआ। थोड़ी देर बाद राधारमण फिर बाहर आया, बंदेहसन छिप गया। राधारमण के जाने के बाद उसने घर में प्रवेश किया, पर गुलनार का स्वर उसे सुनाई न पड़ा।

सरस्वती उस समय आँगन में बैठी हुई बाल सुखा रही थी। एक अपरिचित व्यक्ति को देखकर वह चीख़ उठी। बंदेहसन उसी समय घर के बाहर निकला। यह निश्चय हो गया कि गुलनार वहाँ पर नहीं है। शाम तक वह राधारमण की प्रतीक्षा करता । राधारमण शाम के समय आया, और थोड़ी देर के बाद वह फिर चल पड़ा। इस बार बंदेहसन ने फिर उसका पीछा किया।

राधारमण इस बार एक छोटे-से घर के सामने जाकर रुका। उसने तीन तालियाँ बजाईं, और पाँच बार ज़ंजीर

खटखटाकर आवाज़ दी—"प्रकाश!" प्रकाश ने आकर द्वार खोल दिए। राधारमण घर के अंदर पहुँच गया।

बंदेहसन थोड़ी देर तक द्वार पर खड़ा रहा। वह भी कुछ सोचने के बाद घर में घुसा। एकाएक वह काँप उठा। सामने राधारमण खड़ा हुआ गुलनार से बातें कर रहा था। बंदेहसन का क्रोध उबल पड़ा। वह गरज उठा—"काफ़िर, तेरी यह मजाल!" और उसका छुरा हाथ में चमक उठा।

राधारमण ने बंदेहसन को देखा, वह मुस्किराया। बंदे-हसन रुक गया। उसके हाथ से उसका छुरा छूटकर गिर पड़ा। राधारमण ने छुरा उठा लिया। "तुम यहाँ क्यों आए?" उसने प्रश्न किया। बंदेहसन ने उस प्रश्न का कोई उत्तर न दिया।

राधारमण ने फिर कहा—"तुम्हारा इतना साहस कि तुम मुझ से टक्कर लो! तुम शायद इसका फल नहीं जानते। लो, इसका फल देखो।" इतना कहकर उसने छुरा उठाया।

बंदेहसन को वहाँ देखकर गुलनार का मुख पीला पड़ गया था। वह राधारमण की शक्ति जानती थी, और वह बंदेहसन के घृणा के भावों से भी परिचित थी। दोनो उसके प्रेमी थे, पर वह राधारमण से प्रेम करती थी। उसके हृदय में एक भाव आया, पर उस भाव के आते ही वह सिहर उठी। वह जानती थी कि राधारमण बंदेहसन के प्राण का प्यासा है, और वह यह भी जानती थी कि बंदेहसन राधा-

रमण और उसके प्रेम के मार्ग पर काँटे की भाँति है। फिर यदि राधारमण इस समय बंदेहसन को, जो ऐसा काँटा था कि अपने विष से उसके प्रेमी के प्राण तक ले सकता था, हटा दे, तो इससे क्या हानि ? गुलनार काँप उठी।

यह वही बंदेहसन था, जिसने गुलनार के सुख को अपना सुख समझा और उसके दुःख को अपना दुःख। गुलनार के हृदय में एक प्रकार की वेदना हुई। एकदम वह बंदेहसन और राधारमण के बीच में जाकर खड़ी हो गई। राधारमण रुक गया। उसने गुलनार की ओर देखा, गुलनार उस समय रो रही थी। गुलनार कह उठी—"उसे माफ़ करो, इस दफ़े उसे छोड़ दो।" राधारमण ने फिर बंदेहसन से कहा—"जाओ, इस बार मैं तुम्हें छोड़े देता हूँ; पर याद रखना, यदि फिर तुम मेरे बीच में आओगे, तो कुचल दिए जाओगे।" इतना कहकर उसने द्वार की ओर संकेत किया। बंदेहसन बाहर चला गया।

बाहर जाकर वह रुका। वहाँ से वह लौट न सका। पास के मकान के चबूतरे पर वह बैठ गया। बैठकर वह सोचने लगा। गुलनार उससे प्रेम नहीं करती, यह निश्चय था। गुलनार राधारमण से प्रेम करती थी। बंदेहसन से वह कदापि प्रेम नहीं करती थी। तो क्या वह उससे घृणा करती थी ? नहीं, यदि घृणा करती होती, तो वह उसे बचाती क्यों ? प्रश्न यह था कि फिर गुलनार का

बंदेहसन की ओर कैसा भाव था, वह यह जानना चाहता था, पर वह समझ न सकता था। उसका हृदय कहता था अथवा उसकी बुद्धि कहती थी कि गुलनार को उससे घृणा करनी चाहिए। इसके कारण भी थे। क्या बंदेहसन गुलनार के प्रेमी से घृणा नहीं करता था? क्या वह उसके रक्त का प्यासा न था? और गुलनार बंदेहसन के भावों से भली भाँति परिचित थी। फिर यह स्वाभाविक था कि गुलनार बंदेहसन से घृणा करे। इसी बात पर उसे आश्चर्य था, वह इन्हीं समस्याओं में उलझा पड़ा था।

उसे राधारमण पर क्रोध था। राधारमण ने उस पर दया की और वह गुलनार के कहने से। गुलनार ने उस पर दया की, पर एक अनुचित रूप से। उसने बंदेहसन के दुःखमय जीवन का अंत न होने दिया, वरन् उसने उसको उसके शत्रु ही से प्राण-भिक्षा दिलवाई। बंदेहसन के लिये यह असह्य था। गुलनार पर वह क्रोध करे या न करे, यह उसकी समझ में न आया। पर राधारमण पर उसको क्रोध हो आया।

यह काफ़िर, जिसने अपनी शक्ति द्वारा उसकी प्राणों से भी अधिक प्यारी निधि उससे छीन ली, कितना शक्तिशाली तथा कितना भयानक है। साथ-ही-साथ शायद वह सहृदय भी है। बंदेहसन को उसकी शक्ति तथा उसकी सहृदयता, दोनो पर क्रोध था।

बड़ी देर तक वह वहाँ बैठा रहा। उसके बाद वह उठा, उठकर राधारमण के घर के चारों ओर वह टहलता रहा। इस बीच में राधारमण घर के बाहर चला गया। जाते समय राधारमण ने उसकी ओर देखा। देखकर वह रुका। उसने कहा—"अभी तक तुम यहीं खड़े हो। यहाँ से तुम शीघ्र चले जाओ।" इतना कहकर वह चला गया। बंदेहसन ने कहा—"मैं यहाँ से न जाऊँगा। तुम मुझे मार सकते हो?" राधारमण ने इस उत्तर को सुना या नहीं, यह तो नहीं मालूम; पर वह जाते समय एक बार मुस्किराया, और सीधे चला गया। उसने दूसरी बार मुड़कर देखा तक नहीं। बंदेहसन निश्चिंत भाव से फिर पहले की भाँति घूमने लगा।

एकाएक बंदेहसन चौंक पड़ा। पीछे से किसी ने पुकारा—"बंदेहसन!" बंदेहसन ने पीछे फिरकर देखा, मुहम्मदयाक़ूब पीछे खड़े थे। बंदेहसन मुहम्मदयाक़ूब को देखते ही काँप उठा। मुहम्मदयाक़ूब ने कहा—"तुम यहाँ कहाँ?" बंदेहसन ने कोई उत्तर न दिया।

मुहम्मदयाक़ूब ने पास आकर बंदेहसन का हाथ पकड़ लिया—"बोलो, तुम यहाँ कहाँ?" बंदेहसन फिर भी मौन रहा।

इस बार मुहम्मदयाक़ूब गरज पड़े—"बोलता क्यों नहीं? बता, गुलनार कहाँ है?"

उस समय मुहम्मदयाक़ूब की आँखें अंगारों की भाँति

जल रही थीं। उनके मुख से फेन निकल रहा था। बंदेहसन सिर से पैर तक सिहर उठा। उसने कहा—"मैं गुलनार को ढूँढ़ रहा हूँ।"

"हूँ!" मुहम्मदयाक़ूब ने बंदेहसन की ओर ग़ौर से देखा—"तुम जानते हो कि गुलनार कहाँ है, लेकिन बताते नहीं। वह शख़्स कहाँ है, जो गुलनार को भगा लाया है। मुझे बताओ, बंदेहसन! मैं ज़िंदगी-भर तुम्हारा एहसानमंद रहूँगा।"

कहते-कहते मुहम्मदयाक़ूब उद्विग्न हो गए! उन्होंने बंदेहसन का हाथ पकड़ लिया—"तुम जानते हो और ख़ूब जानते हो। चुप रहकर मुझको धोखा नहीं दे सकते! तुम्हें बताना पड़ेगा कि गुलनार कहाँ है।"

बंदेहसन चुप खड़ा था। मुहम्मदयाक़ूब की बातें वह सुन रहा था या नहीं, यह तो ठीक नहीं मालूम, पर इतना अवश्य है कि वह उनके भाव को समझ रहा था। यदि वह बता दे, तो परिणाम अच्छा न होगा। इतने में उसने राधारमण को लौटते हुए देखा। मुहम्मदयाक़ूब की भी दृष्टि उसी ओर पड़ गई। मुहम्मदयाक़ूब ने बंदेहसन का हाथ छोड़ दिया, वह उसी ओर लपके। बंदेहसन वहीं पर खड़ा रहा। उसने देखा कि राधारमण के पीछे-पीछे मुहम्मदयाक़ूब ने भी उस घर में प्रवेश किया।

राधारमण आकर आँगन में खड़ा हो गया। मुहम्मदयाक़ूब

अपनी कटार निकालकर उसकी ओर झपटे । गुलनार उस समय राधारमण से बातचीत कर रही थी । गुलनार ने अपने पिता को देख लिया। वह पीली पड़ गई। एकाएक तीर की भाँति वह राधारमण और अपने पिता के बीच में आ गई । कटार का पूरा हाथ गुलनार पर पड़ा। एक चीख़ के साथ वह पृथ्वी पर गिर पड़ी ।

राधारमण ने मुड़कर देखा । मुहम्मदयाक़ूब पागल की भाँति खड़ा हुआ हँस रहा था । वह कह उठा—"ज्योतिषीजी ! अब बचो, तुम्हारा जादू मुझ पर नहीं चल सकता ।" उस समय वह गुलनार के शरीर से कटार निकाल रहा था ।

राधारमण की आँखें लाल हो गईं । कड़ककर उसने कहा—"खड़े रहो ।" पर मुहम्मदयाक़ूब कटार निकालकर राधारमण पर झपटा। राधारमण की शक्ति इस बार असफल हुई, वह भागा । मुहम्मदयाक़ूब ने उसका पीछा किया । राधारमण को इस बार मृत्यु से सामना करना पड़ा ।

उसने ऊपर पहुँचकर अपने कमरे के द्वार बंद कर लिए। मुहम्मदयाक़ूब की भयानकता कम हो रही थी । उसने अपनी कटार देखी, उस पर रक्त के कुछ बिंदु थे। एकाएक उसकी चेतना-शक्ति लौट आई । उसने क्या किया, वह काँप उठा। संसार में जिसको वह सबसे अधिक प्यार

करता था, उसी के रक्त से उसकी कटार भीगी हुई थी। वह नीचे दौड़ा।

गुलनार चित पड़ी थी। श्वास अब भी चल रही थी, पर रक्त से पृथ्वी लाल थी। उसकी आँखें बंद थीं, उसके मुख पर शांति छाई हुई थी। मुहम्मदयाक़ूब चिल्ला उठे—"गुलनार!" गुलनार ने अपनी आँखें खोलीं। एक धीमे-से स्वर में उसने कहा—"कौन? प्यारे!"

मुहम्मदयाक़ूब ने फिर पुकारा—"गुलनार!" गुलनार ने मुहम्मदयाक़ूब को देखा, वह मुस्किराई। पर एकाएक वह फिर गंभीर हो गई, उसकी आँखों में आँसू भर आए। उसने कहा—"अब्बा, मुझे मुआफ़ करो। मैंने ग़लती की, लेकिन राधारमण को तो तुमने नहीं मारा? नहीं अब्बा, हाथ जोड़ती हूँ, उसे छोड़ दो। उसको मुआफ़ करो अब्बा! अब्बा!" इतना कहकर उसने अपनी आँखें बंद कर लीं।

राधारमण ने अवसर देखा। मुहम्मदयाक़ूब का उन्माद दूर हो गया था। वह मुस्किराया। गुलनार मर गई। उसे थोड़ा-सा दुःख हुआ, क्योंकि वह उससे प्रेम करती थी। पर वह उससे क्यों प्रेम करती थी? क्योंकि राधारमण की इच्छा थी कि वह उससे प्रेम करे। फिर उसको क्यों न दुःख हो? और मुहम्मदयाक़ूब? मुहम्मदयाक़ूब से तो उसको बदला लेना था। मुहम्मदयाक़ूब की कन्या को उसने नीचे गिराया—बदले का एक अंश समाप्त हो गया था, पर अब उसके सामने वह

स्वयं खड़ा था। उसकी आँखें घृणा तथा प्रसन्नता के भाव से चमक उठीं। मुहम्मदयाक़ूब को मारना उसका कर्तव्य था, उसके दो कारण थे।

पहला कारण बड़ा साधारण था। मुहम्मदयाक़ूब ने उसको विना कारण मारने का प्रयत्न किया था। दूसरा कारण ठीक था या नहीं, यह राधारमण निश्चित न कर सका। गुलनार ने राधारमण को छुड़ाया, एक प्रकार से उसने उसके प्राणों की रक्षा की। गुलनार का वह आदमी था। राधारमण ने गुलनार को अपनी मुक्ति का साधन बनाया था। गुलनार से उसे एक प्रकार की सहानुभूति हो गई थी। गुलनार—मुहम्मदयाक़ूब की कन्या गुलनार—उसके बदले की लक्ष्य थी। पर गुलनार—राधारमण के प्राणों की रक्षा करनेवाली गुलनार—उसको प्यारी थी।

पहले तो उसने क्रोध तथा अपनी पाशविक वृत्ति के अनुसार गुलनार को नीचे गिराया, बाद में उसे अनुभव हुआ कि उसने गुलनार के साथ अन्याय किया। गुलनार मुहम्मदयाक़ूब की कन्या अवश्य थी, पर इसके अर्थ ये नहीं थे कि अपने पिता के कर्मों का परिणाम वह भोगे। राधारमण गुलनार से प्रेम नहीं करता था। दूसरे अवसर पर शायद वह गुलनार पर अपनी तृष्णायुक्त दृष्टि डालकर उसको पतन के अंत तक पहुँचा देता, पर उस स्थिति में राधारमण को पश्चात्ताप होता था।

गुलनार को उसके पिता ने राधारमण के कारण मारा। राधारमण को प्रसन्नता हुई। और साथ-साथ उसे दुःख हुआ। शैतान कहता था—"ठीक हुआ।" ईश्वर कहता था—"तुमको धिक्कार है!"

राधारमण यही सोच रहा था, एकाएक मुहम्मदयाक़ूब ने राधारमण की ओर देखा। क्रोध से उसकी आँखें लाल हो गईं। कड़ककर उसने कहा—"देखो, जानते हो, तुमने क्या किया? तुमने मेरे हाथों से ही मेरी प्यारी पुत्री की हत्या करवाई। उसका खून मेरे हाथों में लगा है, लेकिन अब तुम नहीं बच सकते। सँभलो।" इतना कहकर मुहम्मदयाक़ूब आगे बढ़ा।

राधारमण हँस पड़ा। उसका अट्टहास दालान-भर में गूँज उठा। गुलनार ने अपनी आँखें खोलीं, राधारमण की ओर एक करुण दृष्टि डाली, पर राधारमण उस समय अपने उद्गारों के प्रदर्शित करने में मस्त था। वह गुलनार की उस करुण दृष्टि की प्रार्थना नहीं समझ सका।

राधारमण ने मुहम्मदयाक़ूब की ओर देखा, मुहम्मदयाक़ूब काँप उठा। राधारमण ने कहा—"जानते हो मुहम्मदयाक़ूब कि मैंने तुम्हें कभी कोई हानि नहीं पहुँचाई थी, उस पर भी तुमने मुझे मार डालने की कोशिश की थी। उसका बदला तुम्हें मारकर ही चुकाया जा सकता है।" इतना कहकर राधारमण ने अपनी कटार मुहम्मदयाक़ूब के सीने में भोंक दी।

मुहम्मदयाक़ूब की आँखें निकल आईं। उसने कहा—"ठीक है, ख़ुदा ने मेरे आमालों का बदला मुझे दे दिया। लेकिन काफ़िर, तू भी ऐसी ही मौत मरेगा।"

राधारमण ने उसके शब्द अथवा उसका शाप नहीं सुना, तीर की भाँति वह घर के बाहर निकला। उसके वस्त्रों पर रक्त के दाग़ थे। जाते समय उसने ये शब्द कहे—"अपने जीवन में मैंने प्रथम बार एक मनुष्य की हत्या की है, हे परमेश्वर! मुझे क्षमा कर।"

बंदेहसन ने राधारमण को जाते देखा, साथ-साथ उसने उसके ये वाक्य भी सुने। उसका माथा ठनका, दौड़कर वह घर में गया, जो कुछ उसने देखा, उससे वह पागल-सा हो गया। वह चिल्ला उठा—"गुलनार, प्यारी गुलनार! कहाँ हो?" गुलनार उस समय अपनी अंतिम श्वास ले रही थी। बंदेहसन की आवाज़ सुनकर वह चौंक उठी। उसने अपने नेत्र खोले, संकेत से उसने बंदेहसन को अपने पास बुलाया।

उसने कहा—"बंदेहसन, बैठ जाओ।" बंदेहसन बैठ गया। वह रो रहा था।

गुलनार ने आरंभ किया—"मुझे मुआफ़ करो, मैं तुमसे मुहब्बत नहीं कर सकी। इसका मुझे अफ़सोस है। मुझे मुआफ़ करो बंदेहसन।" गुलनार ने बंदेहसन पर अपनी पथराई हुई दृष्टि डाली, उस समय भी उसकी दृष्टि में मद तथा अमृत का कुछ अंश शेष था।

बंदेहसन चुप हो गया। उसके मुख पर के करुणा के भाव लोप हो गए, गंभीरता ने स्थान जमा लिया।

गुलनार ने फिर कहा—"बंदेहसन, जो कुछ मैंने किया, उसका नतीजा मुझे मिल गया। लेकिन मुझे अपने किए पर अफ़सोस नहीं है। अब जाती हूँ, वक्त पूरा हो गया। खुदा तुमको अच्छा रक्खे!" इतना कहकर गुलनार ने अपनी आँखें बंद कर लीं और इस बार सदा के लिये।

बंदेहसन चीख उठा। उसकी आँखें लाल हो गईं, पागलों की आँखों की भाँति वे इधर-उधर नाचने लगीं। वह चिल्ला उठा—"गुलनार! गुलनार!"

उसने गुलनार का शव उठा लिया। गुलनार के शव को लेकर वह घर के बाहर निकला। लोगों ने उसे देखा, किसी को उसे रोकने का साहस न हुआ। शव लेकर वह गोमती की ओर बढ़ा। उसके मुख पर एक प्रकार की शांति की छाया थी। उसके पैर दृढ़ थे। धीरे-धीरे जिस प्रकार मृत शरीर को दफ़नाने के लिये लोग चलते हैं, बंदेहसन चल रहा था। कुछ लोगों ने उसका पीछा किया—बंदेहसन के पीछे-पीछे वे चिल्लाते हुए चल रहे थे। बंदेहसन ने पीछे मुड़कर देखा तक नहीं।

गोमती के तीर पर आकर वह रुका। शव को वह अपनी एक अमूल्य निधि की भाँति अपने हृदय से चिपटाए हुए था। उसने नभ की ओर देखा—नभ पर उस समय एक

गहरी लालिमा छाई हुई थी । बंदेहसन ने फिर गोमती की ओर देखा—जल-तरंगें ज़ोरों के साथ नाच रही थीं । थोड़ी देर तक वह कुछ सोचता रहा, इसके बाद वह गोमती में कूद पड़ा । पीछे से लोग चिल्ला उठे—"दौड़ो-दौड़ो—" और साथ ही जल-तरंगों ने दोनो को अपने अंग में ले लिया ।

× × ×

दूसरे दिन राधारमण गोमती के किनारे टहल रहा था । उसी समय उसने एक भयानक दृश्य देखा । उसने देखा कि दो शव पानी पर उतरा रहे हैं—एक गुलनार का था और दूसरा बंदेहसन का । गुलनार का शव धारा में बह रहा था । बंदेहसन गुलनार का हाथ पकड़े था । गुलनार धारा में बह रही थी, बंदेहसन उसको खींच रहा था । पर धारा के वेग में गुलनार बह रही थी । और, साथ-साथ वह बंदेहसन को बहाए लिए जाती थी ।

राधारमण कह उठा—"अब भी वही पुरानी बात—वही पुरानी उपमा । यह धारा पतन की है । गुलनार स्वयं पतन की ओर बढ़ती है—साथ-साथ बंदेहसन को भी उसी ओर खींच रही है । कैसी लीला है भगवान !—" इतना कहकर उसने अपनी आँखें बंद कर लीं ।

आठवाँ परिच्छेद

लोगों का कहना था कि प्रकाशचंद्र में पुरुषत्व का अभाव है, और उनके ऐसा कहने के कारण भी थे। प्रकाशचंद्र अपने बाल्यकाल में अच्छा विद्यार्थी था। उसके गुरुदेव उससे बड़े प्रसन्न रहते थे। आगे चलकर उसने भी पढ़ाने-लिखाने का काम किया। पर जैसा हम कह चुके हैं, उसके अधिक पढ़ने-लिखने ने उसकी सारी शारीरिक शक्तियों को अपाहिज बना दिया था। प्रकाशचंद्र को स्त्री की ओर से अनुराग न था। एक बार प्रकाशचंद्र बराबर दो साल तक विद्योपार्जन करने के लिये बाहर रहा। उसकी स्त्री घर पर ही रही, एक बड़ा भारी कारण यह था।

दूसरा कारण बड़ा मजेदार था। प्रकाशचंद्र प्रतापसिंह का शिष्य हो गया था। लोगों ने प्रश्न किया—"क्यों?" लोगों ने ही उत्तर दिया—"क्योंकि प्रतापसिंह सिद्ध है, और प्रकाशचंद्र को उससे पुरुषत्व प्राप्त करने की आशा थी।" वास्तव में यह कारण बड़ा भारी था।

प्रकाशचंद्र के हितैषियों ने उसे उसके विषय में इन झूठी खबरों की सूचना दी। प्रकाशचंद्र क्रोध से लाल हो गया। पर वह कर क्या सकता था? खून का घूँट पीकर रह गया।

उसने केवल यही कहा—"मेरे तीन पुत्र हो चुके हैं—क्या वे लोग अंधे हैं।"

मित्र महोदय ने हँसकर मज़ाक़ के ढंग से कहा—"संभव है, वे पुत्र और किसी के हों।"

प्रकाशचंद्र का मुख पीला पड़ गया, फिर लाल हुआ और फिर सफ़ेद। उसने भी हँसकर कहा—"पर नाम तो मेरा ही है!"

गणित, ज्योतिष, ये बड़े शुष्क विषय हैं। इनका विद्यार्थी भी महा अरसिक होता है। पर प्रकाशचंद्र में रसिकता थी, और किसी अंश तक यथेष्ट थी; पर लोग उस रसिकता को किसी दूसरी कोटि की समझते थे। उनका तात्पर्य था कि वह रसिकता हिजड़ों की रसिकता से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। भगवान् जाने, इतने बड़े विद्वान् पर यह दोषारोपण करने का साहस लोगों को कैसे पड़ता था। शायद इसलिये कि उसके पिता पटवारी थे, पर इसमें तो दोष उसके पिता का था। शायद उसका भी था, क्योंकि वह ऐसे पिता का पुत्र बना।

भारतवर्ष में दुर्भाग्य-वश सामाजिक संगठन बड़ा असुविधा-जनक है। शायद जब समाज बना था, वे नियम बड़े अच्छे रहे हों, पर आगे चलकर वे दूषित हो गए। एक मनुष्य, वह चाहे जितना श्रेष्ठ क्यों न हो, यदि निम्न श्रेणी का है, तो समाज में उसका सदा अपमान होगा। प्रकाशचंद्र का भी यही हाल था। वह गणित तथा ज्योतिष का भारी विद्वान् था।

वह पटवारी का पुत्र होने के कारण कायस्थ-समाज में अपमानित होता था। यह अपमान उसको असह्य था, पर वह कर ही क्या सकता था। कुलीन और अभिमानी लोग गर्व से अपना मस्तक ऊँचा करके प्रकाशचंद्र के सामने उसका अपमान करते थे, प्रकाशचंद्र उस अपमान पर हँस देता था। एक-आध बार उसे क्रोध आया, और उन अवसरों पर उसे उनके क्रोध का पुरस्कार यथेष्ट रूप से मिल गया। फिर उसने उस प्रयोग को न बरतने की क़सम खा ली। उसके बाद उसे एक दूसरी चाल सूझी, उसने उसका प्रयोग करना आरंभ कर दिया।

वह प्रयोग बड़ा अच्छा था—और प्रारंभिक काल में उसे सफलता भी मिली। जैसा हम पहले कह चुके हैं, उसने मुँह पर लोगों की प्रशंसा और पीठ पीछे उनकी बुराई करने का बीड़ा उठाया। पर थोड़े दिनों बाद जब लोगों को उसके इस व्यवहार का पता लग गया, प्रकाशचंद्र को आँबा हरदी लगानी पड़ी। उसके शत्रु हो गए और काफ़ी से ज्यादा।

पिटते-पिटते प्रकाशचंद्र की हड्डी-पसली ढीली पड़ गई। पर उसकी आदत न छूटी। इस अवस्था में परमेश्वर ने उसकी सहायता की। प्रतापसिंह से एक दिन उसका परिचय हुआ, प्रतापसिंह की शक्ति का अनुभव उसे दूसरे दिन हुआ। उसने प्रतापसिंह से सहायता की याचना की। प्रतापसिंह ने उसे उस दिन टाल दिया।

एक दिन प्रतापसिंह की दृष्टि सरस्वती पर पड़ गई—उस दिन से प्रतापसिंह ने प्रकाशचंद्र के घर पर आना-जाना आरंभ कर दिया। थोड़े ही दिनों बाद प्रकाशचंद्र को प्रतापसिंह ने गुरु-दीक्षा दे दी।

पर सरस्वती प्रतापसिंह से प्रेम न कर सकी। उसका कारण था कि वह भवानीशंकर से प्रेम करती थी। प्रतापसिंह अभी तक प्रकाशचंद्र के घर के अंदर नहीं गया था, सरस्वती उससे परदा करती थी। पर भवानीशंकर के संयोग ने उसे साहसी बना दिया। पतन दोनों का हुआ था—भवानीशंकर और सरस्वती का। पर भवानीशंकर सँभल गया, और सरस्वती और नीचे गिरी। भवानीशंकर सँभल गया, इसके कारण थे। सरस्वती नहीं सँभली, इसके भी कारण थे।

भवानीशंकर से प्रेम करनेवाला कोई था, और वह भी किसी से प्रेम करता था—तृष्णा पर प्रेम ने विजय पाई। कर्तव्य उसके लिये सरल था, क्योंकि उर्मिला उसकी सहायक थी। पर सरस्वती? प्रकाशचंद्र से प्रेम करने का प्रयत्न करती थी, पर प्रकाशचंद्र उससे प्रेम नहीं करता था। उसने भवानीशंकर से प्रेम करने का प्रयत्न किया, पर वह प्रयत्न भी निष्फल रहा। प्रकाशचंद्र से सरस्वती को हार्दिक घृणा हो गई थी। शायद प्रकाशचंद्र प्रेम करके अपनी स्त्री को भयानक पतन से बचा लेता, पर प्रकाशचंद्र का हृदय प्रेम के भावों को जानता ही न था।

भवानीशंकर चला गया। सरस्वती को दुःख हुआ। एक नियम है कि चित्त-वृत्ति किसी एक विशेष भाव पर लगी रहती है। प्रेम और तृष्णा—ये दोनो मनुष्य में विद्यमान हैं। एक का प्राबल्य, दूसरे की निर्बलता है। जिस समय सरस्वती को प्रेम न मिला, वह तृष्णा की ओर झुकी। प्रतापसिंह सरस्वती के सामने आया, सरस्वती तृष्णा की दासी हो गई।

प्रकाशचंद्र प्रतापसिंह की मुट्ठी में था—प्रतापसिंह के साथ सरस्वती रहती थी। सरस्वती अपनी मर्यादा को भूल गई थी, वह काफ़ी नीचे गिर गई थी। प्रकाशचंद्र जिस समय घर पर आता था, सरस्वती उदास हो जाती थी। कभी-कभी उसको पश्चात्ताप होता था—और वह तब, जब प्रकाशचंद्र घर पर आता था। पश्चात्ताप अथवा वेदना—सरस्वती को यह असह्य था। यौवन के उल्लास में वेदना! सरस्वती काँप उठती थी।

रणवीर को प्रतापसिंह ने आश्रय दिया—रणवीर उसके यहाँ रहने लगा। रणवीर से और प्रकाशचंद्र से जान-पहचान अवश्य थी, पर उसने सरस्वती को कभी न देखा था। उसने जब सरस्वती को देखा, तो एकाएक चौंक उठा—"यह स्त्री कौन है? यह तो युवती है और साथ-साथ अतुल सुंदरी। यह प्रतापसिंह के साथ अकेले कैसे रहती है!" ये प्रश्न उसके हृदय में उठे।

सरस्वती प्रेम के वास्तविक रूप को नहीं जानती थी, इसका कारण था कि उसने कभी किसी से प्रेम न किया था। उसने रणवीर को देखा—रणवीर सुंदर था, और साथ-साथ नवयुवक था। सरस्वती रणवीर की ओर खिंचने लगी, रणवीर भी सरस्वती की ओर। सरस्वती, हम पहले ही कह चुके हैं, सुंदरी थी। उसके यौवन में अपरिमित मतवालापन था। सरस्वती ने रणवीर की ओर देखा, रणवीर सिर से पैर तक सिहर उठा। प्रश्न हुआ—"यह कैसी दृष्टि?" रणवीर को उस दृष्टि का अनुभव न था।

रणवीर सरस्वती के सामने निकलता था। जब उसे यह मालूम हुआ कि सरस्वती प्रकाशचंद्र की स्त्री है, उसने सरस्वती के मार्ग पर आना छोड़ दिया।

एक दिन रणवीर घर आया। सरस्वती उस दिन आँगन में बाल सुखा रही थी। सरस्वती रणवीर को देखकर मुस्किराई, रणवीर चौंक उठा। उसने सिर नीचा करके पूछा—"क्या भाई साहब हैं?" सरस्वती ने कहा—"हाँ, हैं। चलो, मैं तुम्हें उनके पास पहुँचा दूँ।"

सरस्वती के केश यथेष्ट लंबे थे, और काफ़ी काले थे। उसके केश उसके चारों ओर फैले हुए थे—यहाँ तक कि उसके मुख को भी वे ढँके हुए थे। उस समय सरस्वती का सौंदर्य बहुत बढ़ गया था। उसका मुख मेघ-मालाओं से ढके हुए चंद्रमा की भाँति था। उसके सुडौल शरीर से एक

विशेष प्रकार की आभा देदीप्यमान हो रही थी। उसकी आँखें उस समय लाल हो रही थीं, और वे भी झँपी जाती थीं। उसके पैर डगमगा रहे थे। उसका शरीर तना हुआ था, और वह मुस्किरा रही थी।

सरस्वती आगे-आगे थी और रणवीर पीछे। द्वार पर जाकर वह रुकी—रणवीर भीतर चला गया। सरस्वती ने झपटकर भीतर से द्वार बंद कर लिए; रणवीर चौंक उठा।

सरस्वती अर्धनग्नावस्था में पलँग पर बैठ गई—उसने रणवीर का हाथ पकड़ लिया। रणवीर मौन रहा। सरस्वती ने रणवीर को पलँग पर बिठाल लिया। इसके बाद उसने अलमारी से शराब की बोतल निकाली। एक गिलास उसने पिया, दूसरा उसने रणवीर को दिया। रणवीर काँप रहा था, उसका चित्त डगमगा रहा था, गिलास उसके हाथ से छूट पड़ा।

सरस्वती ने रणवीर की ओर देखा। उस दृष्टि को समझते हुए भी रणवीर न समझ सका। दूसरा गिलास सरस्वती ने फिर उसको दिया, इस बार रणवीर ने इनकार कर दिया। वह कह उठा—"सरस्वती! यह क्या?"

सरस्वती हँस पड़ी। सारा कमरा उस हँसी के उतावले-पन से गूँज उठा। पर एकाएक वह गंभीर हो गई। उसने कहा—"रणवीर, तुम जानते हुए भी इस समय मुझसे बन रहे हो!"

रणवीर सरस्वती के इस व्यवहार के लिये प्रस्तुत न था। उसने संसार का एक भाग न देखा था, और संसार का वही भाग मनुष्य के जीवन तथा उसके पतन से बड़ी जटिलता-पूर्वक संबद्ध है। यौवन और उल्लास, ये दो सदा साथ रहते हैं, और समय-समय पर तृष्णा भी आ जाती है। स्त्री और पुरुष, इनका संबंध वास्तव में बड़ा महत्त्व-पूर्ण है।

व्यभिचार के दो कारण होते हैं—समाज और प्रकृति। समाज का प्रभाव मनुष्य के जीवन पर बड़े महत्त्व का है। मनुष्य के आचार और व्यवहार ही समाज द्वारा निर्मित हैं। समाज में मिलकर मनुष्य उसकी बुराइयों को बड़ी शीघ्रता-पूर्वक अपना लेता है; अच्छाइयों का क्रम बाद में आता है; इसके भी कारण हैं। अच्छी बातों का बहिर् शुष्क होता है, उन पर अपने अस्थायी तथा क्षणिक सुखों को बलिदान कर देना पड़ता है। पर स्थायी तथा क्षणिक सुखों का प्रभाव उनके निकटवर्ती होने के कारण बड़ा शक्तिशाली होता है। बुराइयों का बहिर आकर्षक होता है, और इसीलिये लोग उन्हें शीघ्रता-पूर्वक अपना लेते हैं। फलतः कुत्सित समाज का मुख्य अंग व्यभिचार मनुष्य को ले डूबता है।

प्रकृति दूसरा कारण है, और यह कारण बड़ा महत्त्व-पूर्ण है। मनुष्य की प्रकृति का विश्लेषण बड़ा कठिन कार्य है। हम देखते हैं कि एक समाज में उठने-बैठनेवाले दो मनुष्यों

के आचार-व्यवहार में बड़ा परिवर्तन होता है। कुछ लोग होते हैं, जो प्रकृति से ही विलासिता-प्रिय होते हैं। उनकी प्रकृति, जैसे ही मनुष्य दूषित समाज के संसर्ग में ज़रा भी आया, उग्र रूप धारण कर लेती है, और वह उस मनुष्य को बहुत नीचे गिरा देती है। समाज का प्रभाव तो मुख्य है, पर उसका प्रभाव भिन्न-भिन्न प्रकृति पर भिन्न-भिन्न होता है। ऐसा भी होता है कि एक ही समाज का एक मनुष्य पतन से बच जाता है, और दूसरा मनुष्य पूर्ण रूप से भ्रष्ट हो जाता है।

सरस्वती की प्रकृति और रणवीर की प्रकृति में अंतर था। इसीलिये प्रतापसिंह के साथ बाल्यकाल से रहते हुए भी रणवीर व्यभिचार से बचा रहा। पर सरस्वती प्रताप-सिंह के साथ न होने पर भी नीचे गिर गई। रणवीर ने सरस्वती की ओर देखा। एक बार उसका चित्त विचलित हुआ, दूसरे ही क्षण उसने अपने को रोक लिया—"जानती हो, तुम प्रकाशचंद्र की स्त्री हो!"

सरस्वती ने अपना ओठ काटकर अपने क्रोध को दबाया। उसने फिर कहा—"इससे क्या, पियो, संसार के सुख में अपने को भूल जाओ। देखते क्या हो?" यह कहकर उसने शराब का गिलास फिर बढ़ाया। उसी समय रणवीर उठ खड़ा हुआ। उसने अपना मुख फेरकर कहा—"जाता हूँ सरस्वती, शराब पीकर तुम मतवाली हो गई हो!" इतना

कहकर वह कमरे के बाहर निकल आया। सरस्वती चिल्ला उठी—"इसका परिणाम अच्छा न होगा।"

रणवीर घर के बाहर आकर इन समस्याओं पर सोचने लगा। उसको मालूम हुआ कि अभी संसार में ऐसी अनेकों वस्तुएँ हैं, जिनको वह नहीं जानता। सरस्वती पर विचार करते-करते उसे सुभद्रा की याद आ गई। एकाएक उसके हृदय में एक प्रकार की वेदना-सी होने लगी। सुभद्रा को वह भूल जाना चाहता था, पर उसे वह भूल न सकता था। एकाएक उसने सुभद्रा के यहाँ जाने का निश्चय किया।

दासी के वस्त्र, जिनको पहनकर वह महल से बाहर निकला था, प्रतापसिंह के यहाँ ही थे। उनको लेने के लिये वह फिर लौटा। द्वार पर आकर वह रुका—मकान में प्रवेश करने का साहस न हुआ। उसी समय प्रतापसिंह घर के बाहर आया। रणवीर को देखकर वह मुस्किरा पड़ा। उसने कहा—"रण-वीर, वहाँ क्यों टहल रहे हो। आते क्यों नहीं ?" रणवीर को जाना ही पड़ा। कमरे में बुलाकर प्रतापसिंह ने रणवीर से पूछा—"क्या अभी दो घंटे पहले तुम यहाँ आए थे ?" रणवीर का मुख पीला पड़ गया। उसने कहा—"हाँ।"

"और तुम सरस्वती से मिले थे ?" प्रतापसिंह की आँखें विजय के मद से भरी थीं—"हाँ।" रणवीर ने सिर झुकाए हुए उत्तर दिया।

"मुझे तुमसे यह आशा न थी।" प्रतापसिंह मुस्किराया।

रणवीर चौंक उठा। उसने अपना सिर उठाया। उस समय उसका मुख लज्जा से तमतमा उठा था। उसने कहा—"कैसी आशा ?"

प्रतापसिंह खिलखिलाकर हँस उठा। उसने कहा—"फिर भी तुम एक युवक हो और सरस्वती युवती। सरस्वती सुंदरी भी है, यदि तुम्हारा चित्त चंचल हो उठा, तो उसमें तुम्हारा कोई बड़ा अपराध न था!"

रणवीर की लज्जा क्रोध में परिणत हो गई। उसने कहा—"क्या कहा ? सरस्वती कुलटा है। वह शराब पीकर मुझसे न-जाने क्या बकती रही। मैं उसे नशे में जानकर वहाँ से चला गया। उसमें मेरे चित्त के चंचल होने की क्या बात है ?" प्रतापसिंह ने अपना सिर हिलाया। वह रणवीर को जानता था, रणवीर उससे कभी झूठ न बोला था। उसका रणवीर पर पूर्ण विश्वास था। सरस्वती रणवीर और प्रताप-सिंह के संबंध को न जानती थी, और वह प्रतापसिंह के चरित्र को भी भली भाँति न समझती थी। इसीलिये उसने प्रतापसिंह से यह झूठी बात कह दी थी। प्रतापसिंह को उस समय सरस्वती के कहने पर विश्वास न हुआ, इसीलये उसने रणवीर से यह पूछा।

उसने कहा—"रणवीर, मैंने पहले ही तुमसे कहा था कि मुझको तुमसे ऐसी आशा नहीं थी। मैंने सरस्वती के कथन पर एकाएक विश्वास नहीं कर लिया था, इसीलिये तुमसे पूछा था।"

रणवीर मौन हो गया। प्रतापसिंह ने फिर कहा—"रणवीर, उस स्त्री को क्षमा कर दो, वह बहुत नीचे गिर चुकी है।" रणवीर ने आँखें उठाईं, उसने प्रतापसिंह के मुख पर जो भाव देखे, उनसे वह विस्मित हो गया। कभी भी किसी ने प्रतापसिंह के मुख पर कातरता के भाव न देखे थे। उसने देखा कि प्रतापसिंह के नेत्रों के कोर में दो आँसू के बूँद झलक रहे थे। प्रतापसिंह ने रणवीर को अपनी ओर देखते हुए देखकर शीघ्रता-पूर्वक रूमाल से वे आँसू पोंछ दिए।

रणवीर मौन रहा। प्रतापसिंह के भावों को वह समझ न सका। दोनो अपने-अपने विचारों में मग्न थे। दोनो मौन थे। एक बालक था, दूसरा वृद्ध। एक में कठोरता थी, दूसरे में कोमलता। बालक में कठोरता और वृद्ध में कोमलता—इस पर लोग विश्वास न करेंगे, फिर भी यदि कोई मनुष्य उन दोनो की ओर देखता, तो वह यह कभी न कह सकता कि प्रतापसिंह वृद्ध था।

प्रतापसिंह की अवस्था जैसा हम पहले कह चुके हैं, साठ वर्ष की थी। पर फिर भी दूर से वह एक बीस वर्ष का नवयुवक मालूम होता था।

प्रतापसिंह कानपुर का रहनेवाला था। कहा जाता है कि जब वह बालक था, घर से क्रुद्ध होकर वह बाहर चला गया। उस समय उसकी अवस्था प्रायः चौदह वर्ष की थी। उसके बाद उसके पिता को उसका पता न लगा। कानपुर उन

दिनों एक छोटा-सा गाँव था। गाँव के लोगों में प्रतापसिंह शरीर लड़कों में मशहूर था। लोग उससे भली भाँति परिचित थे, इसलिये उसके भाग जाने की बात गाँव-भर में बड़ी शीघ्रता-पूर्वक फैल गई। समय बीतता गया, और लोग प्रतापसिंह को भूलते गए। प्रतापसिंह की माता का देहांत उसके बाल्यकाल में ही हो गया था। उसका पिता उसे न भूल सका।

बीस वर्ष बाद प्रतापसिंह ने गाँव में फिर प्रवेश किया। उस समय उसे किसी ने पहचाना तक नहीं। प्रतापसिंह के पिता ठाकुर लोचनसिंह उन्हीं दिनों बीमार पड़े थे। जिस समय प्रतापसिंह ने घर में प्रवेश किया, उसके पिता की आत्मा ने वह घर छोड़ा। घर आते समय प्रतापसिंह को यह पहले शकुन हुआ। प्रतापसिंह घर पर रहने लगा। लोगों में चारों ओर उसके विषय में भ्रमात्मक बातें होने लगीं।

एक ने कहा—प्रतापसिंह बंगाले से जादू सीख आया। वह आदमी से बकरा बना देता है, और बकरा से फिर आदमी।"

दूसरा बोला—"अरे भाई, कुछ पूछो न। उसके यहाँ रोज़ परियों का नाच होता है।"

इस पर किसी ने कहा—"अभी कल की बात है, प्रताप-सिंह ने एक आदमी की ओर देखा ही था कि वह बेहोश होकर गिर पड़ा।"

गाँव-भर में प्रतापसिंह के विषय में ये बातें हो रही

थीं, प्रतापसिंह इनको जानता था। लोग उससे डरते थे। उसका कोई मित्र न था, केवल बलवीर।

बलवीर प्रतापसिंह का बाल्यकाल का साथी था। जिस समय प्रतापसिंह घर से गया, बलवीर को बड़ा दुःख हुआ। लोग प्रतापसिंह को भूल गए। पर बलवीर अपने बाल्यकाल के साथी को न भूल सका। समय के साथ बलवीर के हृदय पर खिंचा हुआ प्रतापसिंह का चित्र धुँधला तो अवश्य हो गया, पर मिट न सका।

और प्रतापसिंह भी बलवीर को नहीं भूला। जिस समय वह घर लौटा, उस समय केवल बलवीर ने उसका स्वागत किया। दोनो में बड़ा भेद हो गया था। प्रतापसिंह उस समय बीस वर्ष का एक कोमल नवयुवक मालूम होता था, पर बलवीर एक हृष्ट-पुष्ट मनुष्य था। दोनो में घनिष्ठता बढ़ गई।

बलवीर से लोग प्रतापसिंह के विषय में बातचीत करने का प्रयत्न करते थे, पर बलवीर हँसकर टाल देता था। दस वर्ष बाद बलवीर की मृत्यु हो गई। उसने अपने पुत्र रणवीर का हाथ प्रतापसिंह के हाथ में दे दिया। उस दिन से इन दो मनुष्यों का साथ हुआ। दोनो पिता-पुत्र की भाँति रहने लगे।

प्रतापसिंह रणवीर से प्रेम करता था। इसके चार कारण थे। प्रथम कारण, जो बड़ा साधारण तथा साथ-साथ बड़ा गूढ़ है, यह है कि प्रतापसिंह और रणवीर की प्रकृति में बड़ा

भेद था । एक नियम है कि दो एक-से स्वभाववाले मनुष्यों में मैत्री का होना एक प्रकार से असंभव है । इसका कारण सरल ही है । मनुष्य उस गुण का ही आदर कर सकता है, जो उसमें न हो । यदि एक ही गुण दो मनुष्यों में है, तो उनमें आपस में ईर्ष्या होने लगती है, इसीलिये दो एक ही स्वभाव के मनुष्यों में मैत्री बहुत कम देखी जाती है । मैत्री में मनुष्य अपने मित्र के गुणों को उच्च स्थान देता है, और अवगुणों को क्षम्य समझता है । यह उसी समय हो सकता है, जब आपस में ईर्ष्या न हो । विना ईर्ष्या ही मनुष्य दूसरे के गुणों की प्रशंसा कर सकता है । इसीलिये मैत्री के लिये दो मनुष्यों में विपरीत स्वभावों का होना आवश्यक है ।

दूसरा कारण यह था कि प्रतापसिंह ने रणवीर को बाल्यकाल से पाला था । मनुष्य तो मनुष्य ही है, हम तो यहाँ तक देखते हैं कि मनुष्य अपने पाले हुए पशु से भी प्रेम करने लगता है । प्रतापसिंह ने रणवीर की सेवा की, उसे अपने हाथ खिलाया, और उसे अपनी निधि समझा । रणवीर जब, प्रतापसिंह घर पर आता था, 'भाई साहब ! भाई साहब !' कहकर दौड़ता था । कभी-कभी वह प्रतापसिंह की गोद में आ जाता था । जिस समय प्रतापसिंह को मानसिक वेदना जलाने लगती थी—प्रतापसिंह के-से चरित्रवाले मनुष्य जानते हैं कि उनको मानसिक वेदना प्रायः हुआ

करती है—उस समय वह रणवीर से बातचीत करके सुखी होता था। अपनी गिरी दशा की रणवीर के भोलेपन से तुलना करके वह अपनी मानसिक वेदना को कम करने का प्रयत्न करता था। रणवीर को देखकर कभी-कभी वह परमेश्वर की याद भी कर लेता था।

तीसरा कारण था कि रणवीर बलवीर का पुत्र था। बलवीर ही प्रतापसिंह का संसार में एक मित्र था। बलवीर ने प्रतापसिंह पर विश्वास किया। उसके दुर्गुणों को जानते हुए भी बलवीर ने उसके हाथ में रणवीर को सौंप दिया। पर प्रतापसिंह जितना अपने को न जानता था, उतना बलवीर उसको जानता था। प्रतापसिंह ने मित्र की इच्छा पूरी की। रणवीर बलवीर की सौगात-रूप में था। प्रतापसिंह ने मैत्री का भाव निबाहा। उसने बलवीर के विश्वास का दुरुपयोग नहीं किया।

चौथा कारण बड़ा टेढ़ा है। वह यह कि वह रणवीर से प्रेम करता था। प्राय: एक मनुष्य किसी वस्तु से अकारण ही प्रेम करने लगता है। ऐसा प्रेम बड़ा रहस्य-पूर्ण होता है। यह निष्प्रयोजन प्रेम का भाव संसार में प्राय: दो ही एक मनुष्य में होता है। पर इस भाव का स्थान मनोविज्ञान में बड़े महत्त्व का है। आज तक इस निष्प्रयोजन प्रेम के कारण तथा उसके अर्थ और रूप की कोई व्याख्या नहीं कर सका, और न उनको कोई समझ ही सकता है।

दोनो अपने-अपने विचारों में मग्न थे। चारो ओर एक निस्तब्धता छाई हुई थी। प्रतापसिंह ने अपना सिर उठाया। "रणवीर, तुम उसे क्षमा करोगे न?" रणवीर के भाव उमड़ पड़े। लड़खड़ाती हुई ज़बान से उसने कहा—"हाँ।"

प्रतापसिंह का मुख-मंडल खिल उठा। उसने कहा—"मुझे तुमसे यही आशा थी।" इतना कहकर वह घर के भीतर चला गया।

रणवीर अपने कमरे में गया। रात के समय वह कपड़े की एक पोटली लेकर घर के बाहर निकला। चारो ओर अंधकार छाया हुआ था। रणवीर सीधे नवाब साहब के महल की ओर बढ़ा।

नवाँ परिच्छेद

कहा जाता है कि प्रेम अंधा होता है, और इस कथन में सत्य की एक बड़ी मात्रा है । रणवीर प्रेम करता था, कर्तव्य भी उसके सामने था।

प्रायः यह देखा जाता है कि प्रेम और कर्तव्य में बड़ा तुमुल युद्ध होता है । एक दूसरे के मार्ग पर बाधा की भाँति खड़ा रहता है, और इसके कारण हैं।

कर्तव्य और प्रेम, दोनो का संबंध हृदय से होता है । विचार और तर्कना-शक्ति का एक दूसरा ही स्थान है । यदि मनोवृत्ति का विश्लेषण किया जाय, तो यह प्रकट हो जायगा कि उसकी शक्ति तथा उसके लक्ष्य के दो मुख्य तथा प्रकट विभाग हैं । प्रायः इन दो विभागों में एक प्रकार की शत्रुता भी देखी जाती है । कर्तव्य और प्रेम इन दो भिन्न विभागों से संबद्ध हैं।

कर्तव्य और विश्वास, ये दोनो एक प्रकार से एक हैं । कर्त का व्यहृदय से संबंध है, क्योंकि मस्तिष्क अथवा तर्क का कर्तव्य के साथ बड़ा ढीला संबंध है। कर्तव्य और भावुकता—इन्हीं दोनो का साथ होता है । एक साधारण नियम है कि जो कुछ समाज के नियम हैं, उन्हीं को पालन

करना कर्तव्य हो जाता है। समाज के नियम, चाहे वे झूठे ही क्यों न हों, सर्वमान्य हो जाते हैं। सर्वमान्य होने के लिये उन नियमों को केवल विश्वास का ही सहारा मिलता है, तर्क का नहीं। तर्क के बल पर मनुष्य कभी कोई निर्णय नहीं कर सकता।

प्रेम का भी स्थान हृदय में ही है। प्रेम एक भावना होता है, जिसके उदय होने के कोई कारण नहीं। जिस समय मनुष्य प्रेम करने लगता है, उस समय कर्तव्य प्राय: उसके मार्ग पर आ जाता है। प्रेम का राग दूसरा होता है, प्रेम के उतावलेपन में मनुष्य भला-बुरा नहीं देखता। कर्तव्य के अनुसार मनुष्य को वे ही काम करने चाहिए, जिन्हें समाज ठीक समझता है। विश्वास कर्तव्य का जन्मदाता है, और विश्वास का संबंध हृदय से है, मस्तिष्क से नहीं। विश्वास एक प्रकार से मनुष्य पर समाज के प्रभाव को कहते हैं, जिसका दूसरा नाम अंतरात्मा होता है।

अंतरात्मा ईश्वर-प्रदत्त है, अथवा समाज द्वारा निर्मित, इस पर लोगों के भिन्न-भिन्न मत हैं। फिर भी यदि मनुष्य अंतरात्मा का अध्ययन करे, तो वह देखेगा कि अंतरात्मा उन्हीं बातों को ठीक कहती है, जिन्हें समाज ठीक समझता है। ईश्वरीय नियम एक होते हैं, जिनमें भेद होना असंभव है, और अंतरात्मा में भेद होते हैं। एक हिंदू गोमांस खाना तो दूर रहा, उसकी तरफ़ देखेगा तक नहीं। उसकी

अंतरात्मा सदा गोमांस के देखने तक का विरोध करेगी। और, एक अँगरेज़ अथवा मुसलमान की अंतरात्मा उसे ऐसा करने से कभी मना न करेगी।

हत्या करना सबसे नीच तथा घृणित कार्य समझा जाता है। सभ्य समाज के प्रत्येक व्यक्ति की अंतरात्मा इसको अमानुषिक तथा पैशाचिक कार्य कहकर इसका विरोध करती है। फिर भी आफ़्रिका की मनुष्य-भक्षी जातियाँ मनुष्य को मार डालती हैं, और उसका मांस बड़े स्वाद से खाती हैं। जब इतना भेद, तब अंतरात्मा ईश्वर-प्रदत्त कैसी?

यह ठीक है कि ऐसी कई बातें हैं, जिन पर प्रायः सब मनुष्यों की अंतरात्माएँ सहमत हैं, पर वे बातें सर्वमान्य हैं। एक प्रकार से उन बातों के विना समाज का जीवित रहना असंभव है। पाप और पुण्य यह सब समाज के नियमों की अवहेलना अथवा उनका पालन करना है। परमेश्वर ने किसी पुस्तक में पाप और पुण्यों की संख्या नहीं लिख दी। समाज ने ही उनका निर्णय किया है। कुछ ऐसी बातें हैं, जिनमें प्रत्येक समाज पाप समझता है, और उन्हीं बातों पर सब मनुष्यों की अंतरात्माएँ सहमत हैं। चोरी करना पाप है, क्योंकि यदि समाज का प्रत्येक व्यक्ति चोरी करने लगे, तो समाज में ऐसी गड़बड़ मचेगी कि समाज की उसी दिन समाप्ति हो जायगी। बालक-समाज प्रत्येक मनुष्य से यही सुनता है कि चोरी करना पाप है। उसके हृदय पर

इसका प्रभाव पड़ता है, और उसकी अंतरात्मा बन जाती है। बाद में जब वह चोरी करने पर उद्यत होता है, उसकी अंतरात्मा उसे धिक्कारती है।

रणवीर की अंतरात्मा और उसके प्रेम में युद्ध होने लगा। प्रेम कहता था—"सुभद्रा तुमसे प्रेम करती है, तुम उससे प्रेम करते हो, तुम्हारे विना उसका जीवन कंटकमय है। उसे तुम्हारे विना शांति नहीं है और तुम्हें उसके बिना। चलो, प्रेम करो, कायर मत बनो।" रणवीर के पैर उठते थे, पर एकाएक रुक जाते थे, सामने कर्तव्य की शुष्क मूर्ति खड़ी थी—उसके वे सिद्धांत थे, जिन पर वह सम्मुख अनेक बाधाओं के होते हुए भी चला था। उसके उन सिद्धांतों में, उस कर्तव्य-परायणता में, एक ऐसी निधि थी, जिस पर उसे सदा गर्व रहा। प्रेम उसके जीवन की विषम तपस्या को एक क्षण में मिटा देना चाहता था। रणवीर काँप उठा। वह रुक गया, उसके हृदय में एक प्रकार की पीड़ा होने लगी। अंतरात्मा कह उठी—"क्या करते हो? जानते हो कि सुभद्रा एक दूसरे पुरुष की स्त्री है, और वह दूसरा पुरुष तुम्हारे पिता के समान है, क्योंकि वह राजा है।"

पर उसी समय प्रेम ने उत्तर दिया—"सुभद्रा दूसरे पुरुष की स्त्री अवश्य है, पर उस पुरुष को सुभद्रा पर कोई अधिकार नहीं। सुभद्रा पर अत्याचार तथा अन्याय हुआ है, वह न्याय से नवाब वाजिदअली शाह की पत्नी नहीं है।" इस

उत्तर को काफ़ी न समझकर उसने फिर कहा—"फिर नवाब वाजिदअली शाह तुम्हारे राजा तो नहीं हैं। फिर वह तुम्हारे पिता भी नहीं हैं।" रणवीर फिर बढ़ा, प्रेम ने अंतरात्मा पर विजय पाई। फिर भी रणवीर के हृदय में कसक होती ही रही। प्रेम ने उसकी अमूल्य निधि, जो उसके पास उसके विश्वास और कर्तव्य-परायणता के रूप में थी, छीन ली।

लखनऊ का जन-समुदाय और उसकी चहल-पहल उसका अनुपम ऐश्वर्य और उसकी प्रभा, रणवीर के हृदय में प्रेम की एक नई उमंग भरने के लिये यथेष्ट थी। रणवीर ने एकांत में जाकर वस्त्र पहने। अँगूठी निकालकर अपने हाथों में पहन ली। महल के फाटक पर जाकर वह रुका। एक बार उसके जी में आया कि यहाँ से चलो, तुम्हारा कोई काम नहीं। पर दूसरी ही बार प्रेम ने इस भाव पर विजय पाई। अँगूठी दिखाकर रणवीर ने महल में प्रवेश किया। उस समय चंद्रमा निकल आया था, महल में एक प्रकार की निस्तब्धता छाई हुई थी।

गुलशन उस समय अपने भवन में बैठी हुई थी, और बेगमें बाग़ में अठखेलियाँ कर रही थीं, पर गुलशन के लिये उसका भवन ही एक आश्रय था। गुलशन ने अपना सिर उठाया, रणवीर सामने खड़ा था। एक बार गुलशन मुस्किराई, दूसरी ही बार उसका मुख पीला पड़ गया। उसी समय

सितमआरा ने गुलशन के भवन में प्रवेश किया। रणवीर ने शीघ्रता-पूर्वक अपने मुख पर बुर्क़ा डाल लिया।

सितमआरा गुलशन के पास आकर बैठ गई। सितमआरा अतुल सुंदरी थी, इसका निर्णय इसी बात से किया जा सकता है कि नवाब साहब के हरम में आने के पहले वह एक कुँजड़े की लड़की थी। कहा जाता है कि एक बार नवाब वाजिदअली शाह घूमने को निकले। उनकी दृष्टि अथवा कृपा-दृष्टि मुनिया पर पड़ गई। मुनिया के उस दिन से भाग्य खुल गए, और एक दिन उसने अपने को उस स्वर्ग में पाया, जिसकी उसने स्वप्न में भी कल्पना न की थी। मुनिया उस दिन से सितमआरा हो गई।

सितमआरा को अपने रूप का यथेष्ट गर्व था। ऐसा होना स्वाभाविक भी था; क्योंकि उसके पास गर्व करने की और कोई वस्तु न थी। प्रत्येक मनुष्य को किसी बात पर गर्व होता है। भेद केवल गर्व की मात्रा में है। इस बात का सबसे सरल प्रमाण भारतवर्ष की हिंदू-जाति में मिल सकता है। यह पद-दलित जाति, जो सदियों तक पिसते-पिसते नपुंसक तक हो गई, आज भी अपने पूर्वजों की वीरता पर गर्व करती है। अज्ञान के गड्ढे में गिरकर आज भी बड़े-बड़े दार्शनिकों, गणितज्ञों तथा साहितिज्ञों पर, जो आज से सदियों पूर्व हुए हैं, गर्व करती है।

सितमआरा को गर्व था और यथेष्ट। इसी गर्व के कारण

और बेगमें उसका सदा तिरस्कार किया करती थीं। गुलशन स्वभाव से नम्र थी। हिंदू-घर में, एक उच्च कुल में उसका जन्म हुआ था। उसके पिता की मृत्यु उस समय हुई थी, जब वह एक दुधमुँही बालिका थी। माता पर उसका भार पड़ा। यथेष्ट धन न होने के कारण सुभद्रा का विवाह बाल्यकाल में न हो सका। बाद में हिंदू-समाज के नियमों के अनुसार वह विवाह के अयोग्य हो गई। सुभद्रा की माता को इसका दुःख था। उसी समय रणवीर पर उसकी दृष्टि पड़ी। रणवीर धनी और अकेला था। रणवीर सुभद्रा से बाल्यकाल से ही प्रेम करता था। समय के साथ-साथ उस प्रेम ने भी रंग बदला। रणवीर और सुभद्रा के बीच में लज्जा का प्रादुर्भाव हुआ। रणवीर ने सुभद्रा की माता से विवाह का प्रस्ताव किया। माता की अनुमति मिल गई।

पर रणवीर आश्रित था। प्रतापसिंह उसके मार्ग पर आ गया। प्रतापसिंह रणवीर से प्रेम करता था, पर उसकी पैशाचिक भावना उस प्रेम से न दब सकी। एक ओर उसे रणवीर के सुख का ध्यान था, दूसरी ओर उसे अपने सुख का। रणवीर के सुख को उसने अपने सुख पर बलिदान करने का निश्चय किया। रणवीर को बाहर भेजकर उसने सुभद्रा को नवाब वाजिदअली शाह के महल में भिजवा दिया। सुभद्रा की माता को जिस समय अपनी कन्या की अनुपस्थिति का

पता लगा, उस पर मानो वज्रपात हुआ। पड़ोसियों ने कल्पनाएँ कीं, और समाज के मुखियों ने निश्चय किया कि सुभद्रा भाग गई। चारों ओर से सुभद्रा की माता को ताने मिलने लगे। एक ने कहा—"सयानी लड़की भला घर में कब तक रह सकती है!" दूसरे ने हाँ में हाँ मिलाते हुए योग दिया—"और जब घर में रणवीर-ऐसे जवान लड़कों की पैठ हो!" फलतः सुभद्रा की माता को गंगा में डूबकर आत्महत्या करनी पड़ी।

गुलशन दुःखित थी। इसीलिये उसे दुःखितों के साथ सहानुभूति थी। सितमआरा गुलशन को चाहती थी, इसका कारण यह था कि गुलशन उसका कभी तिरस्कार न करती थी। सितमआरा प्रायः गुलशन के यहाँ चली आती थी। वहाँ वह अपने गुण बखान करती थी, गुलशन उन बातों को मान लेती थी।

सितमआरा आकर बैठ गई, और उसने रणवीर को देखा। गुलशन की ओर देखकर वह मुस्किराई। गुलशन का रंग पीला पड़ गया। उसने कहा—"बहिन, यह लौंडी तुमने नई रक्खी है? गुलशन ने उत्तर दिया—"हाँ।" सितमआरा ने फिर कहा—"लेकिन यह लौंडी बहुत लंबी है। इसका क़द पूरा मरद का-सा है।" गुलशन काँप उठी, उसने धीरे से कहा—"हाँ, मेरा भी यही ख़याल है।" सितमआरा उठ खड़ी हुई। उसने हँसते हुए फिर

कहा—"लेकिन बहन, तुम्हारी यह लौंडी हम लोगों के सामने भी बुरक़ा डाले हुए है—यह ताज्जुब है।" इतना कहकर रणवीर की ओर वह बढ़ी। जाकर उसने रणवीर के मुख पर की नक़ाब उलट दी।

रणवीर चौंक उठा, गुलशन चीख़ पड़ी, और सितमआरा खिलखिलाकर हँस पड़ी। सितमआरा ने कहा—"यह मैं जानती थी, लेकिन बहन गुलशन, तुम्हें डरने की कोई वजह नहीं। मैं किसी से भी यह बात न कहूँगी।"

गुलशन की आँखें कृतज्ञता से चमक उठीं। सितमआरा के गले में बाहें डालकर वह रोने लगी। सितमआरा उसे सांत्वना देने लगी। थोड़ी देर बाद सितमआरा चली गई। गुलशन रणवीर से लिपट गई। रणवीर की वह प्रतीक्षा कर रही थी, उसे उसकी निधि मिल गई।

सितमआरा हृदयहीना न थी। प्रत्येक मनुष्य में सहृदयता होती है, सितमआरा में भी थी। गुलशन ने सितमआरा से, जो अपमान में रही थी, सहानुभूति प्रदर्शित की। सितमआरा में एक बड़ा गुण था, और वह गुण ऐसा है, जो संसार के बहुत कम मनुष्यों में पाया जाता है। वह मनुष्य-स्वभाव की कमज़ोरियों की क़ायल थी—उनको क्षमा करने में वह सदा तत्पर रहती थी। जिस समाज में उसका जन्म हुआ था, उसमें उसने मनुष्य की कमज़ोरियों का अध्ययन किया था। अपनी सहृदयता के कारण

उसे मनुष्य की उन कमज़ोरियों में स्वभाविकता का अनुभव हुआ। बहुत-से लोग उन कमज़ोरियों को स्वाभाविक समझते हुए भी उनको क्षमा करने के लिये तैयार नहीं हैं। सितमआरा उन कमज़ोरियों पर सहानुभूति प्रकट करना जानती थी। सितमआरा लौट आई। रणवीर उस समय बग़ल के कमरे में चला गया था। गुलशन उस समय उदास बैठी थी, सितमआरा ने प्रश्न किया—"बहन, उदास क्यों हो?"

गुलशन रोने लगी। सितमआरा वयस में गुलशन से बड़ी थी—उसने फिर कहा—"बहन, क्या तुम अपने दर्द की कहानी मुझसे कह सकती हो?" गुलशन मौन खड़ी थी। सितमआरा ने फिर पूछा—"यह कौन शख़्स है, जो तुम्हारे यहाँ आया था।" गुलशन रो पड़ी। उसने इस बार उत्तर दिया—"मेरा ख़ाविंद!" सितमआरा के भी आँखों में आँसू भर आए।

सितमआरा ने भी प्रेम किया था, और उस प्रेम की याद एकाएक उस दिन उसे गुलशन ने दिला दी। मुनिया का विवाह न हुआ था, पर उसके विवाह होने की तैयारी हो रही थी। उसकी फूफी का लड़का, जिसका नाम नूर-मुहम्मद था, उसका भावी पति था, और मुनिया को नूर-मुहम्मद के प्रति अनुराग भी था। नूरमुहम्मद का स्वभाव बड़ा शांत था, और वह गंभीर प्रकृति का था। मुनिया चंचल

थी, और वह सदा हँसा करती थी। दोनो एक दूसरे के स्वभाव को पसंद करते थे; दोनो एक दूसरे को चाहते थे। मुनिया नवाब वाजिदअली शाह के हरम में आ गई, इसके बाद वह नूरमुहम्मद को भूल ही गई। एक बार उसे नूर-मुहम्मद की याद तब आई थी, जब उसने सुना था कि उसके वियोग में वह पागल हो गया। उस बार वह थोड़े दिन तक बराबर रोती रही, और दूसरी बार तब, जब गुलशन ने रणवीर को अपना पति बतलाया।

पुरानी बातों की याद एक बार नई स्थिति को विस्मृति के गढ़े में फेंक देती है। सितमआरा थोड़ी देर तक अपने उस जीवन की, जब वह स्वाधीन थी, जब वह प्रेम के बदले प्रेम का व्यवहार करती थी, और जब वह धन तथा ऐश्वर्य के कठोर बंधन से जकड़ी हुई न थी, याद करती रही। इसके बाद उसने अपना मुख उठाया। उसके मुख पर करुणा तथा कसक की एक छाया थी। उसने कहा—"तो फिर क्या करोगी ?"

गुलशन भी यही सोच रही थी। उसने कहा—"कुछ समझ में नहीं आता, तुम्हीं बतलाओ बहन!"

सितमआरा ने कहा—"अच्छा, सोचकर बताऊँगी। बहन, मुझ पर यक़ीन रखना, मैं तुम्हारी जहाँ तक होगा, मदद करूँगी।" इसके बाद सितमआरा चली गई।

रणवीर उस समय तक अपने वस्त्र बदल चुका था—गुलशन

ने अपने भवन के किवाड़ बंद कर लिए। पलँग सजा हुआ था। रणवीर को गुलशन ने पलँग पर बैठाना चाहा, रणवीर फ़र्श ही पर बैठा। उसी समय लौंडी ने गुलशन के कमरे में खाना लाकर रक्खा। लौंडी चली गई। गुलशन ने रणवीर के लिये कुछ थोड़े-से फल मँगवा लिए थे।

गुलशन ने रणवीर को फल अपने हाथ से काटकर दिए। रणवीर उनको खाने से हिचका। गुलशन रणवीर के भावों को समझ गई। उसे दुःख हुआ, अपनी परिस्थिति का अब उसे पूर्ण रूप से अनुभव हुआ। वह कह उठी—"रहने दो, मैं भूल गई थी कि मैं मुसलमान हूँ।" इससे अधिक वह न कह सकी, वह फूट-फूटकर रोने लगी।

रणवीर की अंतरात्मा और उसके प्रेम में फिर युद्ध हुआ, इस समय तर्कना-शक्ति प्रेम के साथ थी। अंतरात्मा ने कहा—"सुभद्रा अब सुभद्रा नहीं है, वरन् गुलशन है—वह अब मुसलमान हो गई है।" प्रेम कह उठा—"सुभद्रा सुभद्रा ही है। वह अपनी इच्छा के विरुद्ध मुसलमान हुई है, फिर मुसलमान और हिंदू, दोनो ही ईश्वर के बनाए हुए हैं।" प्रेम ने विजय पाई, रणवीर ने गुलशन के मुँह पर हाथ रख दिया। उसने वे फल खा लिए। रात अधिक बीत गई थी, दोनो ही भिन्न-भिन्न कमरों में सोने चले गए।

रणवीर को नींद न आई। परिस्थितियों पर वह विचार करता रहा। प्रश्न हुआ—"गुलशन कौन है?" किसी ने

उत्तर दिया—"तुम्हें तुम्हारे मार्ग से च्युत करने का एक साधन!" रणवीर को इस उत्तर से शांति न मिली, फिर प्रश्न हुआ—"वह कौन है?" दूसरी बार उत्तर मिला—"एक निरपराध बालिका, जो तुमसे प्रेम करती है, और जिसके धर्म तथा सुख का नाश तुम्हारे कारण हुआ है।" रणवीर तड़प रहा था। रणवीर के नेत्रों के आगे उसके बाल्यकाल का चित्र आ गया। एक बार रणवीर गिर पड़ा था। उसके चोट लग गई थी। सुभद्रा ने घंटों बैठकर तथा रात-रात-भर जागकर उसकी शुश्रूषा की थी। एक बार रणवीर सुभद्रा पर क्रोधित हो गया था, सुभद्रा उस समय रोने लगी थी। रणवीर को जिस समय सुभद्रा के दुःख का पता लगा, वह सुभद्रा से क्षमा माँगने आया। सुभद्रा ने अपनी आँखें दूसरी ओर फेर ली थीं। रणवीर थोड़ी देर तक मौन खड़ा रहा। सुभद्रा भी मौन खड़ी रही। रणवीर वहाँ से रूठकर चल दिया। सुभद्रा ने दौड़कर रणवीर का हाथ पकड़ लिया था।

बाल्यकाल की घटनाओं में भावुकता की यथेष्ट मात्रा रहती है। रणवीर को उस स्मृति से थोड़ा-सा सुख हुआ और उससे अधिक दुःख। सुख होने के भी कारण थे और दुःख होने के भी।

बाल्यकाल की स्मृति में जिस समय वह अपने को भूल गया, उसने एक बार फिर उस अवस्था का अनुभव किया,

जब मनुष्य संसार की यंत्रणाओं से मुक्त रहता है। उसने उसी अर्द्ध-जाग्रदवस्था में एक बार फिर उसके उस भोलेपन का, उस निश्चिंतता का तथा उस उल्लास का, जो यौवन-काल में पदार्पण करते ही बरफ़ की भाँति गल जाते हैं, अनुभव किया। सुख-समुद्र में वह निमग्न हो गया।

पर वास्तविकता के भयानक रूप ने उसे अधिक समय तक कल्पना के सुखमय प्रासाद में विचरने न दिया, शीघ्र उसे परिस्थितियों का अनुभव हुआ। सुभद्रा नवाब वाजिद-अली शाह की बेगम थी। नवाब वाजिदअली शाह की बेगम! राजा की स्त्री माता के बराबर होती है। रणवीर पसीने से भीग गया, उसका सिर चकराने लगा। उसने सोने का प्रयत्न किया, पर उसे नींद न आई। राजा की स्त्री माता के बराबर होती है—और सुभद्रा मुसलमान है। रणवीर की शक्तियाँ क्षीण होने लगीं। वह उन बातों को भूलना चाहता था, पर ज्यों-ज्यों वह उन्हें भूलने का प्रयत्न करता था, त्यों-त्यों वे बातें उसके मस्तिष्क में उग्र रूप धारण करके नाच उठती थीं।

रणवीर उठा और सिरहाने रक्खी हुई मोमबत्ती को उठाकर धीरे-धीरे दबे पाँवों एक चोर की भाँति उसने सभद्रा के कमरे में प्रवेश किया।

गुलशन भी, जब वह सोने लगी, परिस्थितियों पर विचार करने लगी। उसने सोचा—"रणवीर कौन है?"

हृदय ने उत्तर दिया—"तुम्हारा सर्वस्व।" गुलशन रणवीर को पाकर प्रसन्न थी। गुलशन उस महल-रूपी नरक से निकलना चाहती थी, पर वह निकले कैसे, प्रश्न यह था, और उसी समय उसे सितमआरा के ये शब्द याद आ गए—"बहन, मुझ पर यक़ीन रखना, जहाँ तक होगा, मैं तुम्हारी मदद करूँगी।"

गुलशन को सितमआरा से आशा थी, और उसकी आशा व्यर्थ न थी। गुलशन की आँखों के आगे एक उज्ज्वल भविष्य था। उसकी वह कल्पना कर रही थी। पर एकाएक वह चौंक उठी, वह मुसलमान थी और रणवीर हिंदू। फिर रणवीर का और उसका साथ कैसा! गुलशन की मनोवेदना बढ़ गई। क्या रणवीर उसे स्त्री के रूप में स्वीकार करेगा—शायद, और शायद नहीं। क्यों नहीं? इसलिये कि रणवीर हिंदू है। उसने एक बार इस प्रस्ताव को दूसरे ही कारण देकर टाल दिया था। आज भी वह गुलशन के हाथ से कटे हुए फलों के खाने से हिचका था।

पर आशा ने यह तर्क न टिकने दिया। यदि रणवीर उसे स्त्री-रूप में स्वीकार नहीं करना चाहता था, तो वह फिर क्यों लौट आया? रणवीर उससे प्रेम करता था, यह प्रकट था; क्योंकि उसने हिचककर फिर गुलशन के हाथ के कटे हुए फल खा लिए थे। वह रणवीर को जानती थी, और रणवीर

पर उसे विश्वास था। इन्हीं बातों को सोचते हुए वह सो गई।

उसने एक स्वप्न देखा। एक नदी के किनारे पर वह खड़ी थी, सामने ही दूसरे किनारे पर रणवीर खड़ा था। सुभद्रा और रणवीर दोनो एक दूसरे से मिलना चाहते थे, पर वे असमर्थ थे। एकाएक नदी ओझल हो गई—रणवीर और गुलशन के बीच में केवल एक विस्तृत मैदान रह गया। दोनो बढ़े, बीच में दोनो का मिलन हुआ। गुलशन मुस्कि-राई। पर एकाएक मैदान लोप हो गया, रणवीर और गुलशन, दोनो धार में बहने लगे। दोनो एक दूसरे से लिपटे हुए थे।

गुलशन जाग पड़ी—सामने रणवीर खड़ा था।

रणवीर ने जिस समय गुलशन के कमरे में प्रवेश किया, वह सो रही थी। रणवीर का मुख पीला था और उसकी आँखें श्वेत। रणवीर के पैर काँप रहे थे, और वह गुलशन की ओर आँखें फाड़कर देख रहा था। इतने में गुलशन मुस्किराई—रणवीर मौन खड़ा रहा। गुलशन जाग पड़ी, रणवीर चौंक उठा। गुलशन ने कहा—"कौन ?" वह चीख़ना हीं चाहती थी कि रणवीर ने उसका मुख पकड़ लिया।

जिस समय गुलशन को होश आया, उसने कहा—"रण-वीर, तुम यहाँ क्यों ?" रणवीर मौन रहा। वह एक मूर्ति की भाँति निश्चल खड़ा था।

गुलशन ने हाथ पकड़कर रणवीर को पलँग पर बिठला लिया। उसने फिर कहा—"रणवीर! बोलो, तुम यहाँ क्यों आए?"

रणवीर ने एक बार गुलशन की ओर एक तीक्ष्ण दृष्टि से देखा, दूसरी ही बार सिर नीचा करके उसने कहा—"सुनोगी, मैं यहाँ क्यों आया?"

गुलशन को रणवीर के इस व्यवहार पर आश्चर्य हुआ। उसने कहा—"कहो!" रणवीर ने आरंभ किया—"सुभद्रा—नहीं, गुलशन, मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया था, उसका मुझे पश्चात्ताप करना होगा। जानती हो, तुम मुसलमान हो और मैं हिंदू। तुमसे विवाह करने से—नहीं, तुम्हारे साथ रहने से मैं जाति तथा समाज-च्युत हो जाऊँगा। यही मेरा पश्चात्ताप होगा। तुमने एक बार कहा था कि तुम मेरे साथ यहाँ से चलना चाहती हो। बोलो, क्या अब भी तुम्हारे वे ही विचार हैं?"

गुलशन ने रणवीर का हाथ अपने हृदय पर रखकर कहा—"क्या तुम मुझ पर विश्वास नहीं करते?" रणवीर कह उठा—"विश्वास करता हूँ गुलशन, सब कुछ, पर फिर भी तुम एक बार इस ऐश्वर्य की ओर, इस सुख की ओर देख लो। मेरे साथ जो दु:ख उठाने पड़ेंगे, उनकी कल्पना कर लो, और फिर निश्चय करो।" रणवीर का स्वर काँप रहा था।

गुलशन की आँखों में आँसू भर आए—"तुम नहीं जानते

रणवीर, मैं तुमसे कितना प्रेम करती हूँ—तुम नहीं जानते मेरे हृदय को ! यदि जानते होते, तो ऐसा न कहते ।"

रणवीर अपने को रोक न सका । बालकों की भाँति वह फूट-फूटकर रोने लगा, और गुलशन भी रोने लगी । बड़ी देर तक रो चुकने के पश्चात् जब रणवीर का हृदय हलका हो गया, उसने गुलशन से पूछा—"तो फिर किस प्रकार और कब बाहर चलोगी ?"

गुलशन ने उत्तर दिया—"कल बताऊँगी ।"

रणवीर उठकर अपने कमरे में चला गया ।

दसवाँ परिच्छेद

भवानीशंकर उन लोगों में था, जो चरित्र से दृढ़ नहीं होते। सरस्वती के प्रति उसके हृदय में एक उदासीनता का भाव तो अवश्य था, पर वह अपने को सरस्वती के पतन का कारण समझकर प्रायः धिक्कारा करता था। मनुष्य की कमजोरियों को समझते हुए भी वह कमजोर था, और अपनी कमज़ोरियों को जानकर भी वह उन्हें दूर न कर सकता था।

"सरस्वती कौन है ?" भवानीशंकर के हृदय में प्रायः यह प्रश्न उठा करता था। "समाज—कुत्सित संगठन द्वारा निर्मित समाज का एक दूषित अंग।" यही उत्तर था। उसे सरस्वती पर क्रोध न था—उसे सरस्वती के ऊपर दया आती थी। कभी-कभी वही तृष्णा का पुराना भाव प्रबल हो उठता था। उस समय उर्मिला उसके मार्ग पर आ जाती थी।

सरस्वती से साक्षात् भवानीशंकर के जीवन में एक विकट परिवर्तन करने को यथेष्ट था—भवानीशंकर यह जानता था। वह यह जानते हुए कि तृष्णा पतन का कारण है, कभी-कभी तृष्णा के वशीभूत हो जाता था। स्मृति सुखद थी या दुःखद, इसका निर्णय तो ठीक-ठीक नहीं किया जा सकता—शायद वह दोनो ही थी। सरस्वती का चित्र उसके हृदय-पटल से

नहीं मिट सका, तृष्णा का भाव मरा नहीं था, वह केवल थोड़ी देर के लिये एक दूसरे शक्तिशाली भाव से दब गया था, और वह भाव था करुणा-मिश्रित क्षोभ। समय बीता, और तृष्णा के भाव का प्राबल्य भवानीशंकर को अनुभव हुआ।

पर मार्ग में एक बाधा थी—सरस्वती उससे घृणा करती थी। भवानीशंकर को विश्वास था कि सरस्वती समय के साथ भवानीशंकर के अपराधों को भूल गई होगी; उसका विश्वास था कि वह भवानीशंकर को यदि देख-भर ले, तो पुराना प्रेम उबल पड़ेगा, और सरस्वती भवानीशंकर को आत्मसमर्पण कर देगी। उसका अनुमान किसी अंश तक ठीक था, क्योंकि प्राय: स्त्री-चरित्र से अभिज्ञ मनुष्य ने अनुभव किया होगा कि स्त्री में भावुकता तथा कोमलता का मुख्य स्थान है। सरस्वती स्त्री थी, और इसीलिये उसने सरस्वती में भी भावुकता तथा कोमलता का अनुमान किया। पर इस बार यह अनुमान केवल अनुमान-मात्र ही था। कारण, भवानीशंकर सरस्वती के चरित्र को न जानता था।

सरस्वती में भावों का प्राबल्य था, और उसके भाव स्थायी थे। वह यदि प्रेम कर सकती थी, तो वह घृणा भी कर सकती थी। एक बार वह यदि प्रेम करती थी, तो उसका निर्वाह करती थी। यदि वह घृणा करने लगती थी, तो वह भयानक हो जाती थी। शत्रुता अथवा मित्रता, दोनो ही में वह उग्र रूप धारण कर लेती थी।

भवानीशंकर से सरस्वती ने प्रेम किया था। कहा जाता है कि शत्रुता वह सबसे भयानक होती है, जो एक बार प्रेम करने के बाद हो जाती है। सरस्वती की शत्रुता भी भयानक थी। भवानीशंकर ने सरस्वती को गिराया था—सरस्वती को इसका पूर्ण विश्वास था। सरस्वती को अपने पतन की गुरुता मालूम थी, और इसका उसे शोक होता था। भवानीशंकर ने उसे नीचे गिराया, पर वह भी नीचे गिरा। जब तक दोनो साथ-साथ पतन के मार्ग पर थे, तब तक सरस्वती को संतोष था। पर जब भवानीशंकर पतन के मार्ग से हटा, सरस्वती न हट सकी। भवानीशंकर को पतन के मार्ग से हटने में सहायता मिली—सरस्वती को नहीं मिली। जब तक भवानीशंकर साथ था, तब तक सरस्वती का पतन अधिक नहीं हुआ—भवानीशंकर के चले जाने के बाद उसका पतन भयानक हो गया। सरस्वती इस बात को जानती थी, और इसीलिये वह भवानीशंकर से घृणा करती थी। सरस्वती के हृदय में समय-समय पर बड़ी वेदना होती थी—घंटों वह एकांत में पश्चात्ताप किया करती थी, पर उसे दुःख असह्य था। उस दुःख को भूलने के लिये उसने शराब पीना आरंभ कर दिया।

भवानीशंकर ने सरस्वती से एक बार फिर मिलने का निश्चय किया। वह राधारमण के घर गया। उस समय शाम हो गई थी। सरस्वती अपने कमरे में बैठी हुई पान चबा

रही थी। घर पर उस समय कोई न था। भवानीशंकर ने पुकारा—"पंडित राधारमणजी !"

स्वर सरस्वती का परिचित था। झाँककर सरस्वती ने भवानीशंकर को देखा, एक क्षण उसने कुछ सोचा, फिर नीचे जाकर द्वार खोले।

सरस्वती ने भवानीशंकर से कहा—"वे बाहर गए हैं !" इतना कहकर सरस्वती दरवाज़ा बंद करने लगी। इतने में भवानीशंकर ने कहा—"सरस्वती !" सरस्वती रुक गई। सरस्वती ने घूम करभवानीशंकर को देखा, उसके बाद उसने कहा—"क्या तुमने मुझे बुलाया था ?" भवानीशंकर ने लड़-खड़ाते हुए स्वर में उत्तर दिया—"हाँ।"

सरस्वती थोड़ी देर तक चुप खड़ी रही। भवानीशंकर को आगे कहने का साहस न हुआ। सरस्वती ने रूखे स्वर में कहा—"भवानी बाबू, क्या कहते हो ?"

भवानीशंकर ने आने के पहले सरस्वती को मनाने के ढंग सोच लिए थे, पर उस समय वह अवाक् रह गया। उसने केवल इतना ही कहा—"सरस्वती ! जो कुछ मैं कहना चाहता हूँ, वह तो तुम जानती ही हो।"

सरस्वती ने भवानीशंकर को उसका हाथ पकड़कर यह कहते हुए घर में खींच लिया—"भवानीशंकर, यह स्थान बातचीत करने का नहीं है, भीतर आओ।"

भवानीशंकर सरस्वती के पीछे-पीछे उसके कमरे में गया।

सरस्वती ने उससे फ़र्श पर बैठने को कहा। भवानीशंकर बैठ गया। पास ही सरस्वती भी बैठ गई। सरस्वती ने आरंभ किया—"भवानी बाबू, तुमने मुझे पतित बनाकर ठुकरा दिया था, पर मुझे छोड़ते समय शायद तुम्हारी चित्त-वृत्ति कुछ डाँवाडोल थी। समय व्यतीत हुआ, और तुम्हारी चित्त-वृत्ति फिर ठीक मार्ग पर आ गई। इस समय तुम यहाँ क्यों आए हो, मैं अच्छी तरह से जानती हूँ। इस यौवन के उल्लास में पहले आओ, हम दोनो अपने को भूल जायँ।" यह कहकर उसने एक प्याले में मदिरा लाकर भवानीशंकर को दी। भवानीशंकर कायस्थ था, और कायस्थों में मदिरा का प्रचार था। पर भवानीशंकर ने त्योहारों को छोड़कर कभी मदिरा न पी थी। वह हिचका—सरस्वती ने उसके भावों को ताड़ लिया। उसने कहा—"भवानी बाबू, जब तक हम दोनो अपने को न भूल जायँ, तब तक हम इस क्षणिक सुख का अनुभव नहीं कर सकते। तुम पीते हो, फिर इस समय तुम क्यों झिझक रहे हो?" इतना कहकर सरस्वती ने प्याला भवानीशंकर के मुख से लगा दिया। भवानीशंकर भी अब 'न' न कर सका—प्याला खतम करके उसने रख दिया।

सरस्वती ने कहा—"भवानी बाबू, ठहरो, मैं अभी आती हूँ।" इतना कहकर वह बाहर चली गई। भवानीशंकर कमरे में बैठा रहा।

थोड़ी देर बाद सरस्वती लौटी। उस समय भवानीशंकर

की आँखें लाल थीं, वह नशे में झूम रहा था । उसने कहा—"सरस्वती, प्यास लगी है, थोड़ा पानी लाओ।" सरस्वती ने शराब का दूसरा प्याला दिया। भवानीशंकर ने उसको भी पीकर कहा—"सरस्वती, प्यास नहीं बुझती, और दो।"

सरस्वती ने यह कहते हुए तीसरा प्याला दिया—"भवानी बाबू, इसको जितना पियोगे, प्यास बढ़ती ही चली जायगी, प्यास बुझना असंभव है।"

तीसरा प्याला पीने के बाद भवानीशंकर बेहोश हो गया। सरस्वती कमरे के बाहर चली गई, और भवानीशंकर बेहोश होकर फ़र्श पर लेट गया।

सरस्वती कमरे में लौट आई, उस समय उसके हाथ में एक छुरा था।

सरस्वती ने छुरा उठाकर भवानीशंकर पर प्रहार किया, पर एकाएक उसका हाथ रुक गया। भवानीशंकर मुस्किराया—सरस्वती की आँखों के आगे अतीत का चित्र नाचने लगा। एक बार सरस्वती ने प्रेम के आवेश में भवानीशंकर से कहा था—"भवानी बाबू, मैं तुम पर अपने प्राणों को न्योछावर कर सकती हूँ।" भवानीशंकर उस समय इसी भाँति लेटा था, उसने उस समय प्रेम के नशे में उन्मत्त होकर अपने नेत्र बंद कर लिए थे, और वह उसी प्रकार मुस्किराया था। सरस्वती सिर से पैर तक सिहर उठी।

सरस्वती ने इस मनुष्य से एक बार प्रेम किया था, और इस

मनुष्य ने उससे। इसने सरस्वती को पतित बनाया—सरस्वती ने इस पर विश्वास किया था। इसने सरस्वती के साथ विश्वासघात किया। इसके रक्त से ही सरस्वती के पाप धुल सकते थे।

इसी समय भवानीशंकर बर्रा उठा—"सरस्वती, प्यास नहीं बुझी, और! और!" भवानीशंकर शायद सरस्वती के प्रेम पर व्यंग छोड़ रहा था। सरस्वती तृष्णा की दासी थी—तृष्णा की कभी तृप्ति नहीं होती। सरस्वती यथेष्ट पतित हो चुकी थी। पर उसके पतन का दोषी कौन था? भवानीशंकर! नहीं, स्वयं सरस्वती!

भवानीशंकर के मुख पर पसीने की बूँदें चमक रही थीं। सरस्वती ने छुरा फेंक दिया, झुककर अपने आँचल से उसने भवानीशंकर के मुख से पसीने की बूँदें पोंछीं। सरस्वती का मुख पीला पड़ गया, वह काँप रही थी। भावों के वेग ने स्मृति की सहायता से उसके पैशाचिक भावों को लोप कर दिया। एक बार फिर उसने अपने उस निष्कलंकित जीवन की तथा उस सरल प्रेम की, जिनको उसने भवानीशंकर के हाथ अंधी होकर सौंप दिया, एक क्षीण छाया देखी—उसने भवानीशंकर के भोले मुख की ओर देखा। इसके बाद वह भवानीशंकर के पास बैठ गई, आँचल से वह भवानीशंकर पर हवा करने लगी।

उस समय रात्रि हो गई थी, जब प्रतापसिंह ने घर में प्रवेश किया। प्रतापसिंह ने पुकारा—"सरस्वती!"

सरस्वती कमरे के बाहर निकली, उसने कहा—"क्यों?"

प्रतापसिंह ने सरस्वती की ओर ग़ौर से देखते हुए पूछा—"रणवीर कहाँ है?"

सरस्वती ने प्रतापसिंह को इस प्रकार अपनी ओर आते देखकर अपना सिर झुका लिया था। आज के पहले सरस्वती ने प्रतापसिंह के साथ कभी ऐसा बर्ताव नहीं किया था—उसने धीरे से कहा—"मुझे नहीं मालूम!"

प्रतापसिंह कुछ देर तक मौन खड़ा रहा, उसने फिर कहा—"नहीं मालूम सरस्वती, कल रात से वह न-जाने कहाँ चला गया। तुम्हारा व्यवहार उसके साथ अमानुषिक था। तुम मुझसे झूठ बोली थीं, फिर भी मैंने तुम्हें क्षमा कर दिया था। लेकिन मालूम होता है, फिर तुमने उसके साथ कटु व्यवहार किया!"

सरस्वती ने शांत भाव से उत्तर दिया—"नहीं, मैंने उनके साथ फिर कोई कटु व्यवहार नहीं किया, वह फिर मेरे यहाँ आए ही नहीं।"

प्रतापसिंह ने मन-ही-मन कहा—"रणवीर कहाँ गया है?" उसने सरस्वती से कहा—"जाओ, मैं जा रहा हूँ! द्वार अच्छी तरह से बंद कर लो।" इतना कहकर वह बाहर चला गया। सरस्वती कमरे में लौट गई।

भवानीशंकर को जब होश आया, उसने देखा कि सरस्वती उसके सिराहने बैठी हुई पंखा झल रही है। उसने

पूछा—"मैं कहाँ हूँ ?" सरस्वती ने उत्तर दिया—"मेरे यहाँ ।" भवानीशंकर ने नेत्र बंद कर लिए। उसने कहा—"प्यास लगी है !" सरस्वती ने इस बार उसे ठंडा पानी पीने को दिया। भवानीशंकर उठकर बैठ गया।

सरस्वती ने कहा—"भवानी बाबू, जाओ, अब तुम्हारा मेरे यहाँ काम नहीं।"

भवानीशंकर उठा, पर उसके पैर लड़खड़ाने लगे। उससे चला न गया, वह बैठ गया। सरस्वती ने कहा—"भवानी बाबू, रात अधिक हो गई है, यहीं ठहर जाओ। सुबह चले जाना।"

एक सादा नियम है—समय का मनुष्य के विचारों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। ऐसे अवसर सरस्वती के जीवन में कम नहीं थे, जब उसने भविष्य में अपनी कमज़ोरियों पर विजय पाने का दृढ़ संकल्प किया था; पर आवेश समय के साथ ठंडा पड़ गया। संकल्प लोप हो गए। कमज़ोरियाँ आईं, सरस्वती की मनोवृत्तियाँ विचलित हुईं। बाद में उसे पश्चात्ताप हुआ, फिर संकल्प हुआ, और फिर टूटा। प्रत्येक मनुष्य के साथ ऐसा होता रहता है—सरस्वती भी उस प्रभाव से बच न सकी।

रात्रि बीत गई। सरस्वती को फिर से उस पुराने सुख के लौटने का अनुभव हुआ। प्रातःकाल सरस्वती प्रसन्न थी, शायद वह वास्तविकता को भूल गई थी। भवानीशंकर को प्रातःकाल दुःख हुआ। वह एक बार सँभला, पर फिर गिरा। उसने विश्वासघात किया—उर्मिला के साथ—प्रकाशचंद्र के

साथ—सरस्वती के साथ—और सबसे अधिक अपने साथ। नरक से छूटकर उसने नरक में फिर पदार्पण किया, इसका उसे अनुभव हुआ। सरस्वती प्रसन्न थी, भवानीशंकर दु:खित—भवानीशंकर का पतन हुआ था, सरस्वती का एक प्रकार से उत्थान!

सरस्वती का उत्थान!

सरस्वती का पतन किस अंश तक क्षम्य और किस अंश तक अक्षम्य था, यह प्रश्न है। सरस्वती ने भवानीशंकर से प्रेम किया था। जिस समय वह प्रेम से निराश हो रही थी, उसने प्रेम की एक छाया देखी—तृष्णा में स्थित प्रेम के एक अंश का अनुभव किया। सरस्वती के मन में हुआ कि भवानी-शंकर में ही उसका सारा सुख विद्यमान है। भवानीशंकर उसके लिये सब कुछ हो गया। यह क्षम्य था—यह मनुष्य की ऊँची भावना से संबद्ध था। पर भवानीशंकर के जाने के बाद सरस्वती ने फिर प्रेम को ढूँढ़ना चाहा। प्रेम न मिला—तृष्णा ने, जो प्रेम की एक व्यंग-मात्र है, सरस्वती पर अधिकार जमा लिया। यह पतन अक्षम्य था, क्योंकि वह मनुष्य की नीच वासना से संबद्ध था। सरस्वती के पहली श्रेणी के पतन को कुछ लोग पतन तक न कहेंगे। सरस्वती के जीवन में फिर एक परिवर्तन हुआ।

भवानीशंकर फिर सरस्वती के साथ हुआ। उसकी वे प्रवृ-त्तियाँ, जो निराशा के स्रोत में पड़कर दूषित तथा कलुषित हो

गई थीं, फिर पवित्र हो गईं। जिस दुःख से अपना चित्त हलका करने के लिये उसने तृष्णा की शरण ली थी, वह दुःख लोप हो गया। इसीलिये सरस्वती का उत्थान हुआ।

भवानीशंकर का प्रथम प्रश्न था—"सरस्वती, क्या प्रताप-सिंह रात्रि के समय आए थे?"

सरस्वती ने उत्तर दिया—"हाँ, पर वह उसी समय चले गए थे।"

भवानीशंकर सरस्वती के घर से लौटने लगा। सरस्वती ने कहा—"खाना तो खा लो भवानी बाबू, तब जाना।" भवानी-शंकर रुक गया। भोजन करने के उपरांत सरस्वती ने कहा—"भवानी बाबू, ठहर जाओ, दोपहर के समय कहाँ जाओगे, आराम कर लो।" भवानीशंकर को फिर ठहरना पड़ा।

सरस्वती भवानीशंकर को छोड़ना न चाहती थी, पर भवानीशंकर को इस बात का ख़याल था कि दो-एक दिन विना कहे-सुने घर से ग़ायब रहने पर उसके माता, स्त्री तथा चाचा को क्या ख़याल होगा! फिर भवानीशंकर और सरस्वती के आंतरिक भावों में भेद था। सरस्वती प्रेम करती थी, भवानी-शंकर तृष्णा के वशीभूत था। प्रेम की प्यास कभी नहीं बुझती, तृष्णा तृप्त होने पर शांत हो जाती है। इसीलिये भवानीशंकर जाना चाहता था, पर सरस्वती उसे नहीं छोड़ती थी।

दोपहर बीत गई, संध्या हुई। सरस्वती भवानीशंकर से ठहरने का अनुरोध कर रही थी, भवानीशंकर जाने पर तुला

हुआ था । इतने में द्वार से किसी ने पुकारा—"किवाड़ खोलो।" भवानीशंकर एक कोने में छिप गया, सरस्वती ने द्वार खोले। प्रकाशचंद्र ने घर में प्रवेश किया। प्रवेश करने के साथ ही प्रकाशचंद्र ने द्वार बंद कर लिए।

प्रकाशचंद्र का मुख पीला था। वह दुर्बल-सा मालूम होता था। उसके पैर डगमगा रहे थे, वह काँप रहा था। घर में आते ही उसने सरस्वती से कहा—"एक गिलास पानी दो।" सरस्वती ने उसे पानी दिया।

प्रकाशचंद्र ने पानी लिया, कुछ सोचकर उसने गिलास रख दिया। सरस्वती की ओर उसने देखा—सरस्वती उसकी उस दृष्टि का अर्थ न समझ सकी। उस दृष्टि में कई भावों का सम्मिश्रण था—भय, निराशा, ग्लानि तथा चिंता। उसने कहा—"सरस्वती, इस पानी से प्यास न बुझेगी। तुम्हें मालूम है कि भाई साहब की शराब कहाँ रक्खी है, उसका एक गिलास दो।" सरस्वती ने उसे शराब का एक गिलास दिया।

शराब पीकर प्रकाशचंद्र में स्फूर्ति का संचार हुआ। उसने सरस्वती का हाथ पकड़कर अपने पास बैठा लिया। "सरस्वती!" उसने आरंभ किया—"जानती हो कि मैं यहाँ अभी तक क्यों नहीं आया?"

सरस्वती ने कहा—"नहीं! लेकिन भीतर चलकर बैठो, वहाँ पर यह सब कहना।"

प्रकाशचंद्र—"अभी गर्मी अधिक है, बाहर ही बैठना ठीक

है। हाँ, तुम्हें नहीं मालूम, मैं यहाँ से भागा हुआ हूँ। जिस मकान को भाई साहब ने मेरे नाम से किराए पर लिया है, उसमें भाई साहब ने एक मनुष्य को मार डाला; पर मकान मेरे नाम था, हत्या का रहस्य किसी को नहीं मालूम, इसलिये मैं ही दंड पाऊँगा। समझीं!"

सरस्वती को प्रकाशचंद्र की बातों पर विश्वास था। वह प्रकाशचंद्र के साहस को जानती थी, और साथ-साथ प्रतापसिंह की शक्ति तथा भयानकता का उसे अनुभव भी था, इसलिये उसे प्रकाशचंद्र पर अविश्वास करने का कोई कारण भी न था। उसने प्रकाशचंद्र से कहा—"फिर।"

प्रकाशचंद्र कहने लगा—"मैं लखनऊ से भागना चाहता हूँ। पर मेरे पास धन नहीं है। अगर तुम्हारे पास कुछ हो, तो मुझे दे दो।"

सरस्वती कमरे के अंदर चली गई। उसने पाँच सौ रुपए निकालकर प्रकाशचंद्र के हाथ में रख दिए। प्रकाशचंद्र का मुख खिल गया। उसने कहा—"सरस्वती, मैं जाता हूँ। तुम भाई साहब के साथ—नहीं, तुम भवानीशंकर को बुलवाकर उसके साथ चली आना।" इतना कहकर प्रकाशचंद्र चला गया।

रात्रि हो चली थी, भवानीशंकर ने सरस्वती से कहा—"सरस्वती, तो अब मैं जाता हूँ।"

सरस्वती ने भवानीशंकर का हाथ पकड़ लिया—"कहाँ

जाते हो, जानते हो कि मैं अकेली हूँ। प्रतापसिंह का भी कल रात से पता नहीं।"

भवानीशंकर ने कहा—"सरस्वती, मा और चाचा क्या कहेंगे?"

सरस्वती कह उठी—"तुम मुझे कानपुर ले चलो। वहाँ से लौटकर कह देना कि प्रकाशचंद्र के साथ तुम चले गए थे।"

भवानीशंकर चुप हो गया। सरस्वती यह न जानती थी कि भवानीशंकर ने उर्मिला से अपनी सब बातें कह दी हैं। जानती होती, तो शायद वह भवानीशंकर को रोक लेती।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

नवाब वाजिदअली शाह उन व्यक्तियों में से एक थे, जो व्यभिचारी तथा पतित होते हुए भी साधारण मनुष्यों में अपने प्रति एक श्रद्धा तथा मान का भाव उत्पन्न करा सकते हैं। उनके विषय में कई किंवदंतियाँ प्रसिद्ध हैं, और वे किंवदंतियाँ मज़ेदार हैं।

किंवदंतियाँ यदि पूर्ण रूप से सच्ची नहीं होतीं, तो वे बिलकुल झूठी भी नहीं होतीं। उनके प्रसार में यदि कल्पना तथा मिथ्या का बड़ा हाथ रहता है, तो वे सत्य पर निर्धारित भी होती हैं। किंवदंतियों से उनके मिथ्या प्रसार का ध्यान रखकर सत्य का आभास हो जाता है, और इस प्रकार एक मनुष्य का, उनके द्वारा, मूल्य बड़ी सरलता-पूर्वक जाना जा सकता है।

नवाब साहब, एक बार हम पहले भी कह चुके हैं, सहृदय थे। एक बार वृद्धा से किसी ने मज़ाक़ में कह दिया था कि नवाब साहब अगर लोहे को देख दें, तो वह सोना हो जाय। वृद्धा दरिद्र थी और साथ-साथ किसी अंश तक अंध-विश्वासी भी। उसे विश्वास हो गया, पर उसके घर में कढ़ाई और करछुली को छोड़कर लोहे की कोई भी वस्तु न थी। एक बार नवाब वाजिदअली शाह की सवारी निकल रही

थी—वृद्धा अपने द्वार पर खड़ी होकर करछुल से कढ़ाई बजाने लगी। नवाब साहब का ध्यान आकर्षित हुआ—सवारी रोक दी गई। वृद्धा को बुलाकर नवाब साहब ने उसके इस कढ़ाई बजाने का कारण पूछा। काँपते हुए वृद्धा ने उत्तर दिया—"हुज़ूर, मुझसे एक आदमी ने कहा था कि आप अगर लोहे को देख लें, तो सोना हो जाय। इसीलिये आपको दिखलाने के लिये मैं कढ़ाई बजा रही थी।" नवाब साहब खिलखिलाकर हँस पड़े। उन्होंने कहा—"हाँ, तुमसे जिसने कहा था, ठीक कहा था।" इतना कहकर उन्होंने उसी समय उससे कढ़ाई और करछुल लेकर उनके तौल-भर सोना दिलवा दिया।

इसी प्रकार की कई किंवदंतियाँ और भी प्रचलित हैं। नवाब साहब में एक विशेष गुण था, जिसकी कोई परिभाषा नहीं, और जिसकी कल्पना से एक विशेष प्रकार की सहृदयता का अनुभव होता है। वह गुण है अथवा अवगुण, इसका तो हम ठीक तरह से निर्णय नहीं कर सकते, पर उसमें एक विशेष प्रकार का आकर्षण है। एक कला के विद्यार्थी तथा उदार मनुष्यों को वह गुण-सा ही प्रतीत होगा। वह गुण क्या था, यह उपमा देकर ही बतलाया जा सकता है।

एक बार एक जौहरी नवाब साहब के यहाँ आया। उसने अपना सामान खोलकर दरबार में रख दिया। शाहज़ादे साहब ने कुछ मोती अपने हाथ में उठा लिए। वे मोती जौहरी की दृष्टि में अमूल्य थे। एक बालक के हाथ में वह

उन मोतियों को देखकर बोला—"शाहज़ादे साहब, ज़रा एति-हात से इन मोतियों को रखिएगा, कहीं खो न जायँ।" जौहरी की यह बात नवाब साहब को बुरी लगी। मोती शाहज़ादे के हाथ से लेकर उन्होंने जौहरी को दे दिये। इसके बाद उन्होंने एक आभूषण मँगवाया, जौहरी से उसके दाम पूछे गए। उस आभूषण को देखकर जौहरी चकरा गया। उन अमूल्य रत्नों को देखकर वह निस्तब्ध-सा रह गया। नवाब साहब ने अपने हाथ से उस आभूषण को कुचल डाला, और गोमती में फिकवा दिया। इसके बाद उन्होंने धीरे से उस जौहरी से कहा—"मालूम होता है कि तुम कभी किसी रईस के यहाँ नहीं गए, नहीं तो ऐसा बेहूदा कलाम कभी मुँह से न निकालते। तुम एकदम यहाँ से चले जाओ।"

लोगों का कहना है कि जीवन के प्रारंभिक काल में नवाब साहब एक सुयोग्य शासक थे। यह हम पहले ही कह चुके हैं, पर उनका पतन भयानक हुआ। नवाब साहब में योग्यता तो थी, पर चरित्र की दृढ़ता न थी। उनमें सहृदयता थी, पर वास्त-विकता का ज्ञान उनको न था। इसीलिये उनका पतन हुआ।

'अलीनक़ी!' यह नाम ही नवाब वाजिदअली शाह के पतन का कारण बतलाया जाता है। कहा जाता है कि जब से अलीनक़ी अवध के वज़ीर हुए, तब से अवध के भाग्य ने पलटा खाया। अलीनक़ी शक्ति के भूखे थे या अँगरेज़ों के हाथ में, थे यह ठीक नहीं कहा जा सकता। लोगों के इस पर

भिन्न-भिन्न मत हैं । शायद अलीनक़ी स्वयं शासक बनना चाहते थे, इसीलिये उन्हें अँगरेज़ों पर पूरा विश्वास था। अँगरेज़ अवध को अपने अधीन करना चाहते थे, पर उनके पास कोई बहाना न था। अलीनक़ी उनके सामने आया। "वह लोलुप मनुष्य अँगरेज़ों की इच्छा पूरी कर सकता है।" अँगरेज़ों को इस पर विश्वास था। उन्होंने उसे अवध का शासक बनाने का प्रलोभन दिया। उसी ने नवाब साहब को नीचे गिराया।

यह कुछ लोगों का मत है, जो मान्य नहीं है । क्योंकि तर्क उसके विरुद्ध है । अलीनक़ी को बंगाल का हाल विदित था। शुजाउद्दौला, मीरजाफ़र, और मीरक़ासिम ये राजनीति के शिकार थे, इसलिये अलीनक़ी का-सा दूरदर्शी मनुष्य इतिहास की इन घटनाओं के प्रति अंधा नहीं हो सकता था। फलतः पहला कारण ही ठीक मालूम होता है। अलीनक़ी शक्ति का भूखा था।

अलीनक़ी अपनी महत्त्वाकांक्षाओं से और नवाब साहब की कमज़ोरियों से अभिज्ञ था। नवाब साहब की सहृदयता तथा उनकी वास्तविकता की अनभिज्ञता से, उनकी योग्यता से और उनकी चरित्र की कमज़ोरी से वह भली भाँति परिचित था । शक्तिशाली बनने के लिये उसे नवाब साहब को व्यभिचारी तथा दुर्गुणी बना देना आवश्यक था और उसने ऐसा किया भी। अलीनक़ी अवध का वास्तविक शासक बन बैठा। नवाब वाजिदअली शाह गिरे ।

नवाब साहब को पतित बनाने में जिन साधनों का प्रयोग

किया गया, वे बड़े मज़ेदार हैं। इतिहास उन साधनों का वर्णन नहीं करता। वे साधन किसी पुस्तक में नहीं लिखे, वे उस समय के मनुष्यों की ज़बान पर हैं।

नवाब साहब को जाननेवाले व्यक्ति आज तक कहते हैं कि जो खाना वह खाते थे, यदि वही खाना दूसरा मनुष्य खा लेता, तो अवश्य पागल हो जाता। उदाहरण-स्वरूप एक घटना का उल्लेख करते हुए एक वृद्ध महोदय ने एक मज़ेदार कहानी कही थी—

एक बार एक मेहतर ने नवाब साहब का चबाया हुआ पान खा लिया। पान खाने के बाद वह पागल-सा हो गया। उसमें इतनी उत्तेजना हुई कि लोगों ने पकड़कर उसे नवाब साहब के दरबार में हाज़िर किया। जब नवाब साहब को यह ज्ञात हुआ कि उनके चबाए हुए पान को खाकर उसकी यह दशा हुई, वह बहुत हँसे।

इस घटना से यह अनुमान किया जा सकता है कि नवाब साहब कितने उत्तेजक पदार्थ खाते थे। सच हो या झूठ, लोगों का कहना है कि सँपेरों द्वारा साँप पकड़कर मोरों को खिलाकर पाला जाता था, और नवाब वाजिदअली शाह को उन्हीं मोरों का गोश्त खिलाया जाता था। बारह बटेरों को पालकर और उनमें से एक का गोश्त शेष को नित्य खिलाकर, जो एक बटेर रह जाती, उसका गोश्त नवाब साहब खाते थे। इन उत्ते-जक पदार्थों के खाने का प्रभाव नवाब साहब के लिये अहित-कर और अलीनक़ी के अनुकूल हुआ। भोग-विलास ही

नवाब वाजिदअली शाह का एक काम रह गया, राज्य-कार्य से अरुचि हो गई। धन और भोग-विलास की सामग्रियाँ—नवाब साहब वास्तविकता को भूल गए। वह उस रौरव नरक में जा पड़े, जिसमें मनुष्य एक बार पड़कर फिर नहीं निकल सकता। कभी-कभी नवाब साहब को परिताप होता था, पर शीघ्र ही हृदय उस दैवी वेदना को न सह सकने के कारण चंचल हो जाता था; बहिर सौंदर्य के क्षणिक सुखों में ही वह सांत्वना पाने के लिये भटकने लगता था।

अलीनक़ी का काम पूरा हो गया—नवाब वाजिदअली शाह नाम-मात्र के ही अवध के शासक रह गए। अलीनक़ी की कन्या नवाब वाजिदअली शाह को ब्याही थी, नवाब वाजिद-अली शाह को अलीनक़ी पर विश्वास था। अलीनक़ी में एक बड़ी भारी बात यह थी कि वह पक्के ढोंगी थे। अपना काम निकालना वह ख़ूब जानते थे। पर अलीनक़ी का चरित्र उज्ज्वल न था। शायद वह योग्य भी न थे। शासन की बागडोर अलीनक़ी के हाथ में आते ही अवध की दशा ख़राब हो गई, कुप्रबंध और अन्याय बढ़ गया। नवाब वाजिदअली शाह को प्रसन्न करने के लिये सुंदरी युवतियाँ पकड़-पकड़कर नवाब साहब के हरम में डाल दी जाती थीं। शायद नवाब साहब को यह न विदित था कि उनके महल में अनेकों युवतियाँ अपनी और अपने संबंधियों की इच्छा के प्रतिकूल पकड़ लाई गई हैं।

चरित्र की कमजोरी ने नवाब साहब के पतन में सहायता

दी। कुछ लाग ऐसे होते हैं, और उनकी संख्या कम नहीं, जो यह जानते हुए भी कि उनका पतन हो रहा है, अपना सुधार नहीं कर सकते। एक साधारण-सा प्राकृतिक नियम है कि नीचे गिरने की अपेक्षा ऊपर चढ़ना कठिन होता है। नवाब वाजिद-अली शाह का भी यही हाल था। सुख संसार की प्रत्येक वस्तु में है—भेद केवल मात्रा तथा उसके रूप में होता है। मनुष्य सुख के पीछे दीवाना बना घूमता है, और एक स्थिति से असंतुष्ट होकर वह दूसरी परिस्थिति में जाना चाहता है। केवल प्रश्न रह जाता है—'वह जा सकता है या नहीं?'

नवाब वाजिदअली शाह का सुधार असंभव था—इसके कारण भी थे। सबसे बड़ा कारण उनकी चरित्र की कमज़ोरी में था। सदाचार का रूप शुष्क होता है—एक बार दुराचार में पड़कर मनुष्य के लिये सदाचारी बनना कठिन हो जाता है। विषय-भोग से मनुष्य को तृप्ति नहीं होती। तृष्णा का स्वाभाविक स्वर है—'और! और!' तृष्णा में सुख नहीं होता—केवल सुख की आशा रहती है। आशा का रूप वास्तविकता से अधिक भयानक तथा भ्रांतिकारक है। चरित्र की कमज़ोरी के कारण नवाब साहब बुराइयों को जानते हुए भी उनको नहीं छोड़ सकते थे। जीवन में कुछ ऐसे क्षण होते हैं, जब परिताप की अग्नि मनुष्य से बुराइयों को अलग करने का प्रयत्न करती है, पर एक क्षण बाद ही कल्पना तथा भ्रांति के प्रासाद में जाते ही वह परिताप लोप हो जाता है, यौवन

और उल्लास की तरंग में मनुष्य अपने को भूल जाता है। यही चरित्र की कमज़ोरी है।

नवाब साहब मुसलमान थे, और वे चरित्र के कमज़ोर थे। कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं, जो अपने प्रतिकूल सिद्धांतों के प्रति अंधे होकर अपने अनुकूल सिद्धांतों की शरण लेते हैं—नवाब साहब भी ऐसे मनुष्य थे। मुसलमान धर्म की सादगी तथा उसकी सदाचारिता पर नवाब साहब को विश्वास न था, पर वह भाग्य पर विश्वास करते थे। भाग्य पर विश्वास करनेवाले मनुष्यों का सुधार बड़ा कठिन होता है।

तीसरा और सबसे बड़ा कारण नवाब साहब के मुसाहबों तथा उनके वज़ीर अलीनक़ी में है। नवाब साहब इन लोगों पर विश्वास करते थे, और उनका विश्वास अनुचित था। वह संसार से अनभिज्ञ थे, और इसीलिये इन लोगों के पंजे में फँस गए थे। एक बार फँसकर फिर निकलना कठिन हो जाता है—नवाब साहब का भी यही हाल था। कहा जाता है कि अँगरेज़ों ने नवाब साहब को एक-दो बार उनके कुप्रबंध की समालोचना करते हुए चेतावनी भी दी थी। पर वह चेतावनी नवाब साहब के कानों तक पहुँची, इस पर हमें शक है। इन मुसाहबों ने वे ख़त दबा लिए, राज्य का काम-काज चलता रहा।

इधर लार्ड डलहौज़ी की नीति का पदार्पण हुआ। ब्रिटिश साम्राज्य बढ़ने लगा। गोद लेने की प्रथा का, अँगरेज़ी न्याय के अनुसार, अंत कर दिया गया। इस प्रकार देशी राज्य एक

के बाद एक अँगरेज़ों के हाथ में आने लगे। पर अवध का उत्तराधिकारी मौजूद था, और अवध का राज्य अन्य देशी राज्यों की अपेक्षा बड़ा तथा धनी था। अँगरेज़ अवध को हड़पना चाहते थे, पर नियमानुसार वे अवध को छीन न सकते थे। अंत में उन्हें एक बहाना मिल गया। अवध का कुप्रबंध ही उनके लिये अवध पर अधिकार जमाने के लिये यथेष्ट था।

अवध का प्रबंध कैसा था; पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं। चारो ओर घोर अशांति का निवास था—लूट का बाज़ार गरम था। पर यह कुप्रबंध उन दिनों देशव्यापी था। आज भी एक शक्तिशाली और सुसंगठित राज्य की छाया में कोहाट तथा कलकत्ते की-ऐसी घटनाएँ घटित होती हैं। फिर यदि नवाब वाजिदअली शाह अयोग्य थे, तो उनके पुत्र को राज्य-भार सौंपा जा सकता था। पर सच तो यह है कि अँगरेज़ अवध के शासक बनना चाहते थे, और उन्होंने किया भी ऐसा ही।

नेपाल पर चढ़ाई करने के लिये अवध से अँगरेज़ी सेना की अनुमति माँगी गई। जाने की अनुमति मिल गई। अँगरेज़ी सेना अवध में घुस आई। कार्य सरल हो गया।

नवाब साहब नाच में मस्त थे। उसी समय पोलिटिकल एजेंट और कमांडर-इन्-चीफ़ नवाब साहब से मुलाक़ात करने आए। तहमत बाँधे हुए नवाब साहब बाहर चले आए; क्योंकि पोलिटिकल एजेंट ने कहा था कि मिलना आवश्यक है, और उन्हें जल्दी है। बाहर आते ही नवाब साहब को हुक्म

सुनाया गया—राज्य से वह उतार दिए गए थे । उस समय अलीनक़ी वहीं थे। आज्ञा सुनकर वह मुस्किराए। नवाब साहब का मुख पीला पड़ गया । राधारमण की भविष्य-वाणी पूरी हुई। इसके बाद नवाब साहब ने सिर उठाया—उनके उस पीले तथा क्षीण मुख पर एक बार फिर वह पुराना गर्व दौड़ गया। उन्होंने रेज़ीडेंट की ओर देखा। उसके बाद उन्होंने अलीनक़ी की ओर देखा, और फिर अपनी राजधानी की ओर देखकर उन्होंने एक ठंडी श्वास ली। मुख पर क्षणिक लालिमा के स्थान पर सफ़ेदी छा गई। धीरे से उन्होंने कहा—"जो ख़ुदा की मर्ज़ी !" और उन्होंने अँगरेज़ों को आत्मसमर्पण कर दिया।

नवाब साहब को उसी समय महल छोड़ देना पड़ा । इसके बाद लखनऊ के जन-समुदाय में यह ख़बर गूँज उठी—"नवाब वाजिदअली शाह गिरफ़्तार कर लिए गए।" यह कहा जाता है कि कुछ ताल्लुक़दारों ने नवाब साहब से मिलकर कहा था—"हुज़ूर, अगर इजाज़त हो, तो हमारी तलवारें आपको छुड़ाने की कोशिश करें।" नवाब साहब ने शांत भाव से उत्तर दिया था—"जाने दो—ख़ुदा की ऐसी ही मर्ज़ी है। मेरे लिये बेगुनाहों का ख़ून बहाने से कोई फ़ायदा न होगा।"

अवध का राज्य अँगरेज़ों के हाथ में आ गया। बड़ी बेगम साहबा ने अथवा यों कहिए कि शाहज़ादे की माता ने सम्राज्ञी से प्रार्थना करने का विचार किया । पर बीच ही में

ग़दर हो गया। ग़दर के कारण क्या थे, इस पर लोगों के भिन्न-भिन्न मत हैं, पर हमारे ख़याल से लॉर्ड डलहौज़ी की नीति उसका मुख्य कारण है। ग़दर हुआ, यह प्रतीत होने लगा कि भारतीय राज्य-च्युत नरेशों के दिन फिरे। पर भाग्य उनके विपरीत था, भारतीयों ने ही भारतीयों के विरुद्ध विदेशियों को सहायता दी। सारी आशाएँ नष्ट हो गईं।

राष्ट्रीयता का भाव भारतवर्ष के लिये एक नई वस्तु है, भारतवर्ष में धर्म का भाव ही प्रधान रहा है, और नमकहरामी करना भारतीयों की दृष्टि में सबसे बड़ा पाप है। लाखों कष्ट सहकर भी एक भारतीय अपने स्वामी की सहायता करेगा, यह भारतवर्ष की एक विशेषता है। इसीलिये, इतने बड़े देश को ग़ुलामी के बंधनों में बँधना पड़ा है, और इसी वजह से भारतीयों ने ही भारतीयों के विरुद्ध अँगरेज़ों को सहायता दी।

हाँ, अवध में भी ग़दर हुआ, और समय पाकर शक्ति द्वारा लोगों ने अँगरेज़ों से अवध छीनने का प्रयत्न किया। प्रयत्न असफल हुआ। इसके बाद प्रार्थना-पत्र गया—उनका उत्तर मज़ेदार मिला। अवध को अँगरेज़ों ने बाग़ियों के हाथ से छीन लिया था, इसलिये अवध अँगरेज़ों का हो गया था, और नवाब वाजिदअली शाह के कुलवालों को उस पर कोई अधिकार नहीं रहा।

इस प्रकार अवध के राज्य का अंत हुआ।

बारहवाँ परिच्छेद

प्रतापसिंह को चिंता हुई—रणवीर कहाँ गया ?

एकाएक प्रतापसिंह को ख़याल आया । वह चौंक उठा । क्या यह संभव था ? क्या रणवीर सुभद्रा के यहाँ जा सकता है ? नहीं ।—शायद हाँ ।

सुभद्रा को प्रतापसिंह अपनी संपत्ति समझता था । रणवीर का सुभद्रा की ओर देखना तक उसकी एक अनधिकार चेष्टा थी । प्रतापसिंह का यह सोचते-सोचते मुख लाल हो गया । रणवीर का इतना साहस ! यह प्रतापसिंह के लिये असह्य था ।

यदि वास्तव में रणवीर सुभद्रा के यहाँ फिर पहुँच गया, तो प्रतापसिंह पराजित हुआ ।—"पराजित !" प्रतापसिंह के नाम के आगे "पराजित-शब्द" ! क्या यह संभव था । प्रताप-सिंह कह उठा—"नहीं !" फिर भी प्रतापसिंह को शांति न मिली । इस छोटे-से छोकरे से परितप्त होना—प्रतापसिंह का क्रोध धीरे-धीरे बढ़ने लगा । पर रात्रि हो गई थी, महल में प्रतापसिंह का जाना असंभव था, वह घर लौट आया । घर आकर वह विना कुछ कहे-सुने सरस्वती के कमरे में घुसता चला गया । भवानीशंकर उस समय लेटा हुआ था; सरस्वती बैठी हुई पान लगा रही थी ।

भवानीशंकर को देखकर प्रतापसिंह चौंक उठा। भवानीशंकर का मुख लज्जा के कारण लाल हो गया, और सरस्वती का मुख भय के कारण पीला। भवानीशंकर उठकर खड़ा हो गया। प्रतापसिंह ने भवानीशंकर का हाथ पकड़कर बिठला दिया, और पास ही स्वयं बैठ गया। पहला प्रश्न प्रतापसिंह ने भवानीशंकर से किया—"भवानीशंकर, तुम यहाँ क्यों आए?" भवानीशंकर ने उस प्रश्न का कोई उत्तर न दिया। वह पृथ्वी पर देख रहा था। सरस्वती कह उठी—"यह उनसे मिलने आए थे, मैंने इन्हें बुलाकर बिठला लिया।"

सरस्वती के उस उत्तर पर प्रतापसिंह को आश्चर्य हुआ। वह सरस्वती के भावों को जानता था, फिर उन भावों में यह एकाएक कैसा परिवर्तन! प्रथम बार प्रतापसिंह एक विशेष व्यक्ति के चरित्र को समझने में असमर्थ हुआ। प्रतापसिंह के चरित्र के अध्ययन के कुछ बँधे हुए नियम थे। वे नियम एक प्रकार से सर्वव्यापी थे। पर सरस्वती का चरित्र उन नियमों में नहीं आया था। प्रतापसिंह को अनुभव हुआ कि उसे अभी बहुत कुछ समझना बाक़ी है। प्रतापसिंह मौन था। वह इन्हीं विचारों में मग्न था। थोड़ी देर बाद उसने अपनी आँखें खोलीं। उसने कहा—"सरस्वती, मैं तुम्हारे चरित्र को अभी तक नहीं समझ सका। अच्छा।" प्रतापसिंह मुस्किराया—"अब मुझे तुम्हारी आवश्यकता नहीं रही, जो तुम्हारी इच्छा हो, वह करो।"

इस अपमान को सरस्वती न सह सकी । उसका मुख श्वेत हो गया। पर प्रतापसिंह को देखकर वह एकाएक काँप उठी। प्रतापसिंह मुस्किराता हुआ बाहर चला गया—उसके हृदय में दूसरे ही विचार चक्कर काट रहे थे—"रणवीर कहाँ है ?"

"सुभद्रा पर किसका अधिकार है ?" प्रश्न यह था। प्रतापसिंह ने रणवीर को सुभद्रा के लिये ही धोका दिया था। सुभद्रा के कारण प्रतापसिंह ने अपने पुत्र को धोका देकर बड़ा पाप किया। प्रतापसिंह यह मानता था! पर एक बार जब वह इस पाप में अग्रसर हो गया। उसका फल वह भोगना ही चाहता था। इतना पाप करके वह फल न भोगे, प्रतापसिंह के लिये यह भाव ही असह्य था। फिर रणवीर था क्या ? रणवीर को क्या अधिकार था कि वह प्रतापसिंह की वस्तु को उसके सामने ही उससे छीन ले।

यह सब होते हुए भी रणवीर से वह पराजित हुआ। "पराजित हुआ !" नहीं, पर वह पराजित हो रहा था। विजय प्रतापसिंह पा सकता था, पर पाता न था। रणवीर उस समय सुभद्रा के पास था, और प्रतापसिंह एक चिंतायुक्त रात्रि व्यतीत कर रहा था। जीवन की तपस्या का क्या यही फल था ? क्या वह शक्ति, जो प्रतापसिंह ने प्राप्त की थी, इसीलिये थी कि दूसरे सुख भोगें, और प्रतापसिंह मुख देखा करे।

प्रतापसिंह सोने का प्रयत्न करता था, पर उसे नींद न आती थी। धीरे-धीरे पुरानी घटनाएँ उसके सामने आने लगीं।

रणवीर कौन था ? प्रतापसिंह का पौष्य-पुत्र !—नहीं, कोई नहीं। रणवीर के पिता से और प्रतापसिंह से मैत्री थी, फिर रणवीर केवल उसके मित्र का पुत्र था। रणवीर को क्या अधिकार था कि वह प्रतापसिंह के सुखों में बाधा डाले ? रणवीर ने बाल्यकाल से जो कुछ किया, वह सब प्रतापसिंह की इच्छा के विरुद्ध किया। फिर प्रतापसिंह ने उसे ऐसा करने से रोका क्यों नहीं ? प्रतापसिंह को स्वयं अपने पर क्रोध हो आया। प्रतापसिंह ने करवट बदली।

पर अब भी समय था, प्रतापसिंह की शक्ति उसमें अब भी थी। वह अब भी रणवीर को मिट्टी में मिला सकता था। उसने रणवीर को मिट्टी में मिलाने का प्रण कर लिया। पर उसके हृदय को शांति न मिली। रात्रि अधिक बीत गई थी—धीरे-धीरे उसे नींद आने लगी।

कानपुर से मिला हुआ जाजमऊ नाम का एक स्थान है, प्रतापसिंह वहाँ प्रायः जाया करता था। जाजमऊ में कहा जाता है, राजा ययाति ने एक क़िला बनवाया था। क़िला तो अब नहीं रहा, पर एक टीला-सा अब भी विद्यमान है। उस टीले पर प्रतापसिंह खड़ा होकर प्राय गंगा का दृश्य देखा करता था। प्रतापसिंह ने उस टीले पर रणवीर से प्रायः बातें की थीं। वह उन्हीं दिनों की बातें सोच रहा था। उसी टीले पर वह रणवीर के साथ खड़ा था कि एकाएक सुभद्रा वहाँ आ गई। दौड़कर वह रणवीर से लिपट गई। प्रतापसिंह ने बढ़-

कर सुभद्रा को रणवीर से छीनकर स्वयं लेना चाहा था। उस समय वह टीले के किनारे खड़ा था, नीचे गंगा बड़े वेग से बह रही थीं। उसकी पीठ गंगा की ओर थी। रणवीर ने प्रतापसिंह को धक्का दिया, प्रतापसिंह नीचे गिरने लगा, पर साथ-साथ प्रतापसिंह ने भी रणवीर को पकड़ लिया। रणवीर को गिरते देख सुभद्रा रणवीर से लिपट गई। तीनों गंगा के अंक में गिरे, और बहने लगे।

प्रतापसिंह की आँखें खुल गईं। वह उस समय पसीने से तर था, और काँप रहा था। स्वप्न भयानक था, प्रतापसिंह डर गया। जीवन में प्रथम बार वह डरा था, यह विचारकर वह और भी भयभीत हो गया।

उस स्वप्न को भूलने का प्रयत्न करते हुए प्रतापसिंह ने सोना चाहा, पर उसे नींद न आई। वह कितना नीचे गिरा—और वह नीचे गिरता जा रहा था। व्यभिचार उसकी दृष्टि में पाप न था, पर उसके साधन पाप-पूर्ण थे। उसने हत्या भी की थी। वह हत्या यद्यपि उसने बदले की ज्वाला शांत करने को की थी, लेकिन फिर भी वह हत्या ही थी। उसका फल भविष्य में मरने के बाद क्या होगा?

प्रतापसिंह इस विचार से घबरा गया। पर रणवीर!

पहले हत्या और फिर रणवीर, इन दो भावों को एक दूसरे के बाद आते हुए देखकर प्रतापसिंह मुस्किराया। रणवीर को किसी भी प्रकार मार्ग से हटाना ही होगा, लेकिन वह

स्वप्न ? प्रतापसिंह की मुस्किराहट ने चिंता का रूप धारण कर लिया। क्या वास्तव में वह स्वप्न ठीक होगा ? असंभव !

उस समय सूर्य निकल आए थे, और जन-रव लखनऊ की सड़कों पर गूँजने लगा था। प्रतापसिंह उठा, उठकर उसने नित्यकर्मों से निवृत्त होकर कपड़े पहने। घर से निकलने के पहले उसने सरस्वती को पुकारा, सरस्वती उसके कमरे में आई। सरस्वती का हृदय धड़क रहा था।

प्रतापसिंह ने कहा—"मैं जाता हूँ। तुम भी अब कानपुर लौट जाओ। यहाँ तुम बेकार पड़ी हो। प्रकाशचंद्र कानपुर में ही हैं, वह अब यहाँ न आवेंगे।"

सरस्वती चली गई। वह कानपुर जाने को तैयार ही बैठी थी।

प्रतापसिंह घर के बाहर निकला। एकाएक उसकी बाईं आँख फड़क उठी—यह अपशकुन कैसा ?"

शकुन—मनुष्य के जीवन में इसका बड़ा महत्त्व-पूर्ण स्थान है। कुछ लोग शकुन पर विश्वास करते हैं, कुछ लोग नहीं। शकुन की स्थिति उन लोगों के लिये ही है, जो उन पर विश्वास करते हैं। जो उन पर विश्वास नहीं करते, उनके लिये नहीं। इसके कारण हैं।

शकुन के अस्तित्व के सिद्ध करने के लिये हमें कुछ बातों को पहले ही से मान लेना पड़ेगा। यह बहुत लोग मानते हैं कि किसी अच्छे या बुरे काम होने के पश्चात् उसको उसकी

सूचना मिल जाती है अर्थात् उसका हृदय प्रसन्न या मलीन हो जाता है। इसको अँगरेजी में प्रेज़ेंटीमेंट (Presentiment) कहते हैं। बड़े-बड़े पाश्चात्त्य विद्वानों का यही विचार है।

ये भावनाएँ, जो भविष्य को सूचित करती रहती हैं, भिन्न-भिन्न रूप में आभासित होती हैं। शकुन एक साधन-मात्र है। नेत्रों का फड़कना एक प्राकृतिक व्यापार है, पर जब एक मनुष्य नेत्रों के फड़कने में शकुन मानने लगता है, उसके नेत्र उसके ज्ञान में उसी समय फड़कते हैं, जब उसे कुछ सूचना मिलनी होती है। हम सोते हैं, और उस समय नेत्र फड़कते हैं। पर सुषुप्तावस्था में हमें नेत्रों का फड़कना नहीं मालूम होता। उस स्थान पर उस शकुन का हमारे लिये कोई अस्तित्व ही नहीं। जिस शकुन पर हमारा ध्यान एकाएक चला जाता है, केवल वही शकुन हैं, दूसरे नहीं। इस प्रकार प्रकृति के नियमों के साथ-साथ हम परमेश्वर की लीला का भी अनुभव करते हैं। भविष्य ही ऐसी परिस्थितियों में डाल देता है कि शकुन हो, और भविष्य उन शकुनों के अनुसार होता है।

कभी पहले प्रतापसिंह ने शकुनों पर विचार न किया था। आज एकाएक उस शकुन पर वह रुक गया। उसने लौटना चाहा, एकाएक किसी शख्स ने कहा—"यह कमज़ोरी कैसी?" प्रतापसिंह ने हृदय को दबाया। उस समय उसके मुख पर कर्कशता की एक छाया दौड़ गई। निराशा के साहस के साथ वह आगे बढ़ा।

प्रतापसिंह सीधा नवाब साहब के महल की ओर बढ़ा। पहरेदार राधारमण की शक्ति से और नवाब वाजिदअली शाह उसके प्रभाव से भली भाँति परिचित थे। उन्होंने राधारमण को न रोका। उस समय दस बजे थे। नवाब साहब गुसल कर रहे थे। राधारमण नवाब साहब के दीवान में बैठ गया।

नवाब साहब दीवाने-खास में आए। राधारमण ने नवाब साहब को आशीर्वाद दिया। नवाब साहब ने बैठते हुए पूछा—"कहिए ज्योतिषीजी, कैसे तकलीफ़ की?"

राधारमण ने बैठे-ही-बैठे उत्तर दिया—"यों ही हुज़ूर से मिलने चला आया था।"

नवाब साहब ने थोड़ी देर मौन रहने के बाद फिर पूछा—"ज्योतिषीजी, तो आप लखनऊ में कब तक ठहरिएगा?"

राधारमण ने सिर उठाया। उसकी दृष्टि नवाब वाजिदअली शाह की दृष्टि से मिल गई। नवाब साहब के सारे शरीर में एक कँपकँपी दौड़ गई। राधारमण ने उत्तर दिया—"अभी तो यहीं रहने का इरादा है।" थोड़ी देर मौन रहने के बाद राधारमण ने आरंभ किया—"हुज़ूर, मैं अपनी हम-शीरा से मिलना चाहता हूँ।" राधारमण चुप हो गया। एक विचार आया—"महल में रणवीर की उपस्थिति क्यों न कह दूँ?" उसी समय उसकी शक्ति ने उसे धिक्कारा—"कायर कहीं के! क्या रणवीर को परास्त करने में तुम समर्थ नहीं हो?" दूसरे भाव ने विजय पाई, पर राधारमण भूलता था।

परमेश्वर और शैतान—राधारमण में इन दोनो की शक्तियों का एक विचित्र सम्मिश्रण था। कठोरता के साथ-साथ राधारमण के हृदय के एक कोने में कोमलता भी थी। राधारमण अपने चरित्र के विश्लेषण करते समय उस प्राकृतिक कोमलता की, उस ईश्वरीय भाव की उपेक्षा करता था। राधारमण स्वयं ही अपने चरित्र से अनभिज्ञ था।

रणवीर की अनुपस्थिति में राधारमण उसे मिट्टी में मिलाने का दृढ़ संकल्प करता था, पर रणवीर से साक्षात् होते ही उसके वे भाव बरफ़ की भाँति गल जाते थे। उस समय उसके हृदय की कोमलता का प्राधान्य हो जाता था, और राधारमण की भयानकता लोप हो जाती थी। पुत्र-प्रेम राधारमण के पैशाचिक भाव से प्रबल था, और यही राधारमण न जानता था। राधारमण रणवीर को बालक समझकर उसकी उपेक्षा करता था, पर वह यह न जानता था कि वह बालक राधारमण से अधिक शक्तिशाली था। रणवीर शक्तिशाली न था, वरन् राधारमण ही रणवीर के सामने कमज़ोर था।

नवाब साहब हँसने लगे—"तो यों कहिए कि आप अपनी हमशीरा से मिलने आए थे। ठहरिए, इंतज़ाम करवाए देता हूँ।" इतना कहकर नवाब साहब ने खोजे को महल के अंदर भेजा।

इतने में अलीनक़ी ने दीवाने-ख़ास में प्रवेश किया। राधारमण बैठा ही रहा। राधारमण को देखकर अलीनक़ी ख़ून का

घूँट पीकर रह गया। राधारमण अलीनक़ी को देखकर मुस्किराया। अलीनक़ी ने अपना मुख फेर लिया।

नवाब साहब मज़े में थे। वज़ीर को बैठने की आज्ञा देकर उन्होंने राधारमण से पूछा—"कहिए ज्योतिषीजी, वज़ीर साहब मुझसे क्या कहना चाहते हैं?"

राधारमण ने मुस्किराते हुए कहा—"हुज़ूर, वज़ीर साहब के न कहने की लाख कोशिश करते हुए भी मैं उन्हीं के मुँह से अपने सामने सब कहलाए देता हूँ, गो कि मामला ऐसा नहीं है कि हर एक शख्स सुन सके।" इतना कहकर राधारमण ने अपनी ओर देखते हुए अलीनक़ी के नेत्रों से अपने नेत्र मिला दिए। अलीनक़ी काँपने लगा। लड़खड़ाती हुई ज़बान में उसने कहा—"हुज़ूर, नेपाल पर चढ़ाई करने के लिये फिरंगियों ने आपके मुल्क से होते हुए अपनी फ़ौज भेजने की इजाज़त माँगी है।" राधारमण ने नवाब वाजिद-अली शाह की ओर देखा। वज़ीर अलीनक़ी ने अपनी आँखें झुका लीं।

नवाब साहब हँस पड़े—"वज़ीर साहब, ज्योतिषीजी आप पर भी हावी आ जाते हैं। अच्छा, तो फिर क्या किया जाय?"

वज़ीर साहब ने सिर झुकाए हुए उत्तर दिया—"हुज़ूर, इजाज़त दे देने में क्या हर्ज है? उसमें हमारा तो कोई नुक़सान नहीं।"

नवाब साहब कुछ सोचने लगे—"ज्योतिषी, आप बत-लावें कि क्या किया जाय ?" राधारमण ने कुछ सोचकर उत्तर दिया—"मेरा तो यह ख़याल है कि आप इजाज़त न दें।" नवाब साहब ने आँखें बंद कर लीं।

आँखें खोलकर नवाब वाजिदअली शाह ने कहा—"वज़ीर साहब, आप ख़त भेज दें कि अवध के सूबे से अँगरेजों की फ़ौज के गुज़रने की मेरी इजाज़त नहीं है।"

वज़ीर साहब का मुख क्रोध से लाल हुआ—फिर पीला। उन्होंने कहा—"जो मर्ज़ी हुज़ूर की।" इतना कहकर बाहर चले गए। जाते वक़्त उन्होंने राधारमण की ओर एक घृणा-मिश्रित तिरस्कार की दृष्टि डाली। उस समय राधारमण वज़ीर साहब की ओर न देख रहा था।

राधारमण ने थोड़ी देर तक चुप रहकर कहा—"हुज़ूर, एक बात और मैं बतलाना चाहता हूँ। वज़ीर साहब आपकी सल्तनत की जड़ खोद रहे हैं। आप उनसे होशियार हो जायँ।"

नवाब वाजिदअली शाह के मुख पर एक निराशा का भाव दौड़ गया। उन्होंने आकाश की ओर देखा, फिर उन्होंने कहा—"जाने दो इन बातों को—फिर कभी इस पर सोचूँगा।" इतना कहकर नवाब साहब ने अपने नेत्र बंद कर लिए।

राधारमण ने थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद कहा—

"हुजूर की जो मर्जी हो, वह करूँ। नवाब वाजिदअली शाह ने राधारमण की ओर देखा। उनकी दृष्टि प्रकट करती थी कि नवाब साहब राधारमण के आंतरिक भावों को समझ गए थे। इसके बाद वह कुछ सोचने लगे। उनके मुख पर चिंता की छाया का कुछ क्षणों तक निवास रहा, इसके बाद दृढ़ता की एक मलिन रेखा भी आई, पर वह एक क्षण बाद ही लोप हो गई, और विलासिता के भाव का प्राबल्य हो उठा।

दोनो अपने-अपने विचारों में मग्न थे। राधारमण और नवाब वाजिदअली शाह, दोनो ही कल्पना के प्रासाद में भ्रमण कर रहे थे—वास्तविकता का किसी को भी ज्ञान न था। दोनो ही अपने भविष्य के प्रति अंधे थे।

इसी समय घबराए हुए खोजा ने प्रवेश किया, वह चिल्ला उठा—"हुजूर, जान बख़्शी जाय, ग़ज़ब हो गया। बेगम साहबा महल में नहीं हैं। न-जाने कहाँ चली गईं।"

नवाब साहब उठ खड़े हुए। राधारमण चौंक उठा। खोजे ने फिर कहा—"कल रात तक वह महल में रही हैं। किस वक़्त वह महल से चली गईं, इसका पता किसी को नहीं है। राधा-रमण कुछ सोचने के बाद मुस्किरा पड़ा। धीरे-धीरे वह बिना नवाब साहब की आज्ञा के महल के बाहर जाने लगा। नवाब साहब ने राधारमण का हाथ पकड़ लिया—"ज्योतिषीजी, क्या आप पता लगा सकते हैं?"

राधारमण के मुख पर एक पैशाचिक छाया आई, उसने

कहना चाहा—"हाँ।" पर वह रुक गया। एकाएक रणवीर का चित्र उसकी आँखों के आगे नाचने लगा।

"रणवीर को नवाब साहब के हाथ में अगर सौंप दूँ, तो मेरे मार्ग से सारी बाधाएँ दूर हो जायँ," पर राधारमण का यह विचार लोप हो गया। उसके साहस और उसके गर्व ने उसके पैशाचिक भाव को दबाते हुए कहा—"कायर कहीं के। तुम्हारे पुत्र को कोई दूसरा दंड दे—क्या यही तुम्हारा स्वाभिमान है; क्या यही तुम्हारी शक्ति है? क्या तुम उसको दंड देने में समर्थ नहीं हो?"

नवाब साहब ने फिर कहा—"बोलते क्यों नहीं ज्योतिषीजी, क्या तुम मेरी मदद कर सकते हो?" राधारमण ने सिर उठाया। उसने धीरे से कहा—"नहीं।" फिर उसने कहा—"हुज़ूर, आप भी ढुँढवावें। मैं अपने भरसक ख़ुद उसे ढूँढ़ने की कोशिश करूँगा।" इतना कहकर राधारमण चला गया।

नवाब साहब ने महल-भर ढुँढ़वा डाला। क्रोध से उनका मुख तमतमा उठा। उसी समय उन्होंने आज्ञा निकाली—"जो कोई गुलशन और उसके प्रेमी को पकड़ लावेगा, उसको हज़ार रुपया इनाम।" चारों ओर सवार छोड़ दिए गए।

तेरहवाँ परिच्छेद

सितमआरा ने प्रेम किया था, इसीलिये वह प्रेम की कसक से परिचित थी। यदि किसी की उसके साथ सहानुभूति थी, तो गुलशन की, और इसीलिये गुलशन से उसको अनुराग हो गया था। गुलशन वयस में सितमआरा से छोटी थी और साथ-साथ उसकी अपेक्षा अनुभव-रहित। फिर गुलशन सीधी थी।

सितमआरा, हम पहले कह चुके हैं, एक कुँजड़े की लड़की थी। सितमआरा के घर के पास एक युवक रहता था, उसका नाम था गुलमुहम्मद। वह जाति का कुँजड़ा था, और सजातीय समवयस्क तथा पड़ोसी होने के कारण दोनो में प्रेम हो गया था। बाल्यकाल में दोनो ने साथ-साथ खेला था, पर समय ने दोनो को अलग-अलग कर दिया था—यहाँ तक कि दोनो एक दूसरे को भूल गए थे।

दोनो ने यौवनावस्था में पदार्पण किया। गुलमुहम्मद एक बार लखनऊ आया। उसने सितमआरा को देखा। देखते ही वह उस पर मोहित हो गया। सितमआरा की दूकान के सामने गुलमुहम्मद रोज़ घंटों खड़ा रहता था। सितमआरा

गुलमुहम्मद को पहचानती न थी—उसने गुलमुहम्मद की ओर देखा तक नहीं।

पर एक मनुष्य का यों दूकान के सामने बेकार घंटों खड़ा रहना अधिक समय तक सितमआरा से छिपा न रह सका। गुलमुहम्मद को बुलाकर एक दिन उससे उसने उसका नाम पूछा। 'गुलमुहम्मद' नाम सुनते ही कुछ देर तक सोचा, एकाएक उसे अपने बाल्यकाल का जीवन याद हो आया।

"क्या यह वही गुलमुहम्मद है, जो उसके साथ लड़कपन में खेला करता था ?"

हाँ—सितमआरा ने उसको आदर-पूर्वक बिठाला। सितमआरा के पिता ने उसका स्वागत किया। गुलमुहम्मद एक हृष्ट-पुष्ट नवयुवक था, साथ-ही-साथ वह सुंदर भी था, उस पर वह सितमआरा से प्रेम करता था। सितमआरा भी उससे प्रेम करने लगी थी। सितमआरा के पिता को गुलमुहम्मद और सितमआरा का जोड़ा भा गया। सगाई कर दी गई। गुलमुहम्मद घर चला गया।

गुलमुहम्मद घर से कार्य-वश लखनऊ लौटा, सितमआरा का पता न था। वहाँ से वह दूकान भी उठ गई थी। लोगों से पूछने पर मालूम हुआ कि सितमआरा नवाब साहब की बेगम हो गई है, और उसके माता-पिता को यथेष्ट धन मिला है, जिसके कारण उन्होंने दूकान छोड़ दी। गुलमुहम्मद पागल हो गया। वह सीधे महल की ओर चल पड़ा।

सितमआरा भी गुलमुहम्मद से प्रेम करने लगी थी। उसकी महल में जाने की इच्छा न थी, पर वह पराधीन थी। गुल-मुहम्मद ही उसके जीवन का सर्वस्व था।

गुलमुहम्मद ने महल में घुसने का प्रयत्न किया, दरबान ने उसे पकड़ लिया। पागल की भाँति गुलमुहम्मद ने दरबान को दे पटका, दरबान ने आवाज़ दी। सहायतार्थ सिपाही आ गए। गुलमुहम्मद क़त्ल कर दिया गया।

सितमआरा को इसकी ख़बर हुई—वह उस समय गुल-मुहम्मद की ही याद कर रही थी। ख़बर सुनकर वह पृथ्वी पर गिर पड़ी। बड़ी सेवा तथा शुश्रूषा के बाद वह उठी। इसके बाद उसने कई दिनों तक भोजन करना छोड़ दिया।

पर समय के साथ-साथ घाव अच्छा होने लगा। गुलमुहम्मद का अस्तित्व एक छाया-मात्र रह गया। कभी-कभी सितमआरा को उस अभागे प्रेमी की याद आती थी, उस समय उसका सारा शरीर काँप उठता था। पर दूसरे ही क्षण वह उस भोग-विलास में, जिससे वह सदैव घिरी रहती थी, निमग्न हो जाती थी।

सितमआरा प्रकृति की कोमल थी। भावुकता का उसमें विशेष स्थान था।

गुलशन दुःखित थी। सितमआरा भी प्रेम की कसक से परिचित थी। भावों की समता ने दोनो में एक अनुराग पैदा कर दिया था। मैत्री आरंभ होने के कारण दूसरे ही थे—दोनो

निराश्रय थे। दोनो ही मित्रता-रहित थे। बाद में मैत्री बढ़ गई।

सितमआरा ने गुलशन को सहायता देने का वचन दिया था, और वह सहायता देने को तुली हुई थी। पर महलों से बाहर निकलना असंभव-सा था। फिर भी सितमआरा ने साहस न छोड़ा।

सवेरा हुआ, रणवीर महल से बाहर जाने को व्यग्र था। गुलशन भी व्यग्र थी। कार्य जितनी जल्दी समाप्त हो जाय, उतना ही अच्छा। गुलशन को सितमआरा का भरोसा था। गुलशन उठी, उस समय रणवीर सो रहा था। रणवीर एक निश्‍चितता की नींद सो रहा था—गुलशन ने उसे जगाना उचित न समझा। वह सितमआरा के पास गई।

सितमआरा ने गुलशन को बैठाया। उसने उसे पान दिए। इसके बाद उसने कहा—"बहन, मैं जानती हूँ, तुम यहाँ क्यों आई हो।" इतना कहकर वह मुस्किरा पड़ी, पर उसकी मुस्किराहट में एक चिंता का भाव मिश्रित था।

गुलशन चुप रही। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में आँसू भर आए, सितमआरा की ओर उसने कातर भाव से देखा। सितमआरा ने फिर कहा—रात-भर मैं इस पर सोचती रही हूँ कि तुम महल छोड़ना चाहती हो। तुम्हारे महल छोड़ने से मुझे कितना अफ़सोस होगा, तुम नहीं जानतीं। फिर भी तुम्हारी ख़ुशी के लिये मैं तुम्हारी जुदाई के ग़म को बरदाश्त कर लूँगी।"

गुलशन सितमआरा से लिपटकर फूट-फूटकर रोने लगी। उसने कहा—"बहन, तुम देवी हो।" सितमआरा को प्रसन्न देखकर गुलशन को बड़ा सुख हुआ।

गुलशन सितमआरा के यहाँ से लौट आई। वह आते ही रणवीर के पास गई। रणवीर उस समय भी सो रहा था। रणवीर ने उसी निद्रितावस्था में कहा—"चलो, पतन की ओर हम-तुम दोनों ही चलें, चलो, हम-तुम साथ ही मरें। लेकिन यह क्या? यह क्या?" इतना कहकर वह चिल्ला उठा। गुलशन ने रणवीर को जगाया, उसने आँखें खोलीं। गुलशन को सामने खड़ा देखकर वह चौंक उठा। उसने कहा—"मैं यहाँ कहाँ?"

गुलशन ने कोई उत्तर न दिया। रणवीर ने फिर कहा—"मैं यहाँ कहाँ, और तुम क्यों आई?" गुलशन फिर भी मौन रही। धीरे-धीरे रणवीर को होश हुआ। उसे सब बातें याद आ गईं, वह उठ खड़ा हुआ। उठने के साथ ही पहला प्रश्न उसने यह किया—"सुभद्रा, तो आज तुम यहाँ से मेरे साथ चलोगी?"

गुलशन ने धीरे से उत्तर दिया—"हाँ।"

रणवीर ने कुछ देर तक मौन रहकर फिर पूछा—"किस समय?"

गुलशन ने उसी भाँति शांत भाव से उत्तर दिया—"यह नहीं मालूम।"

यह नहीं मालूम।" रणवीर इस वाक्य का अर्थ न समझ सका।

"यह नहीं मालूम।" गुलशन ने आरंभ किया—अभी मैं सितम के यहाँ गई थी, उसने मुझसे वादा किया है कि आज हम लोगों को वह बाहर निकलने में मदद देगी। सारा इंत-ज़ाम उन्हीं के सिपुर्द है। मैं यहाँ नई हूँ। महल के क़ायदों से नावाक़िफ़ हूँ।" गुलशन चुप हो गई।

रणवीर उठा, उठकर उसने चारो ओर देखा, कुल्ला इत्यादि करने के लिये जल रक्खा था, रणवीर रुक गया। मुसल-मान के जल को वह ग्रहण करे, यह असंभव था। फिर गुल-शन भी तो मुसलमान थी। हाँ, और नहीं। 'हाँ' इसीलिये कि वह नवाब साहब की बेगम थी। उसने मुसलमानों के हाथ का छुआ हुआ खाया-पिया था। 'नहीं' इसीलिये कि वह हृदय से हिंदू थी, और ज़बरदस्ती मुसलमान बनाई गई थी।

पर रणवीर समाज-च्युत, यहाँ तक कि वह जाति-च्युत होने जा रहा था। समाज और जाति की दृष्टि में गुलशन मुसल-मान थी—वह हिंदू हो ही नहीं सकती थी। रणवीर की अंत-रात्मा में बड़ी हलचल मच गई।

"ये वेश्याएँ कौन हैं?" रणवीर के हृदय में सबसे पहला प्रश्न यह उठा।

"मुसलमान!" वही उत्तर मिला।

फिर ये धर्म के बड़े-बड़े महंत जो वेश्याओं के यहाँ, जो

अंतर और बहिर दोनो ही से पतित हैं, पड़े रहते हैं, क्योंकि समाज तथा जाति-च्युत नहीं होते ? क्या एक अनाथ अत्याचार-पीड़ित हिंदू-रमणी के साथ प्रेम करके उसे उद्धार करने में एक मनुष्य समाज-च्युत हो जाता है ? रणवीर को हिंदू-समाज से घृणा होने लगी ।

रणवीर ने अपना लक्ष्य निर्धारित कर लिया । वह उठा, उसने मुँह धोया । गुलशन ने उसे जलपान करने के लिये दूध दिया । दूध पीकर वह फिर सोचने लगा । अनेकों विचार उसके हृदय में आते थे, और लोप हो जाते थे । धीरे-धीरे दोपहर बीत गई ।

संध्या आई । साथ-साथ महल में अनेकों प्रकार के आमोद-प्रमोद होने लगे । रात्रि के समय होनेवाले नाच के लिये सब उत्सुक थे, और इस हलचल में सितमआरा के षड्यंत्र को सफलता भी मिली । रणवीर के हृदय में अनेकों प्रकार के विचार उठते थे । विलास तथा ऐश्वर्य ने उसे एक बार चक्कर में डाल दिया । इसी सुख तथा धन पर मनुष्य अपने जीवन को बलिदान कर देता है—सुभद्रा उसके लिये यह सब छोड़ रही थी ।

एकाएक एक दूसरा ही विचार रणवीर के मस्तिष्क में चक्कर काटने लगा । क्या वह सफलता-पूर्वक सुभद्रा के साथ महल के बाहर निकल सकेगा ? प्रश्न यह था—उत्तर कठिन था ।

नवाब वाजिदअली शाह के महल में जब नाच होता था,

तो प्रत्येक बेगम का उपस्थित रहना आवश्यक था। संध्या होने के बाद ही फ़ानूस जला दिए गए। सब बेगमें एकत्रित होने लगीं। गुलशन घबड़ा गई। उसने सितमआरा से कहा—"बहन, वहाँ चलना है, क्या करोगी ?" सितमआरा मुस्किरा पड़ी। गुलशन सितमआरा पर विश्वास तो अवश्य करती थी, पर ऐसे अवसरों पर विश्वास की नींव बड़ी कच्ची रहती थी। सितमआरा की मुस्किराहट से गुलशन सिर से पैर तक काँप उठी।

सितमआरा ने गुलशन का भाव समझ लिया। वह और ज़ोर से हँस पड़ी। उसने उससे कहा—"पगली कहीं की। तू शायद मुझ पर शक करती है।" इसके बाद उसके नेत्रों में आँसू झलक आए। उसने कहा—"गुलशन, तुम इतने दिन तक मेरे साथ रहकर भी मुझे नहीं जान पाईं। तुम्हीं मुझ पर शक करोगी, तो फिर मुझ पर यक़ीन कौन करेगा ?" इतना कहते-कहते उसकी हिचकियाँ बँध गईं।

गुलशन ने अनुभव किया कि उसने अपराध किया। वह भी सितमआरा से लिपटकर रोने लगी। उसने कहा—"बहन, मुआफ़ करना। मैंने तुम्हारे साथ ग़ैरइंसाफ़ी की।"

सितमआरा ने रोना बंद कर दिया। उसने कहा—"बहन, मैं जो कुछ करूँगी, वह तुम्हारे भले के लिये ही करूँगी।" गुलशन को विश्वास हो गया।

नाच-रंग आरंभ हो गया। विलासिता के समुद्र में सब ग़ोते

लगाने लगे। मदिरा के प्रभाव से सब झूमने लगे। इसी समय उस विलासिता के प्रासाद में एक हलचल मच गई। नाच-रंग बंद हो गया, चारों ओर सन्नाटा छा गया।

सितमआरा को ग़श आ गया। बेगमात उसके चारों ओर एकत्रित हो गईं। पंखे झले जाने लगे, लेकिन फिर भी सितम-आरा को होश न आया। अंत में नवाब साहब ने सितमआरा को उसके भवन में भिजवा दिया। साथ में सेवा करने के लिये सितम की सहेली गुलशन को भी आज्ञा मिल गई। इसके बाद नाच-रंग और भी जोरों के साथ आरंभ हो गया। आमोद-प्रमोद में सब सितमआरा और गुलशन की अनु-पस्थिति को भूल गए।

सितमआरा को अपने भवन में पहुँचते ही होश आ गया। उसने अपने नेत्र खोले। उस समय उसके पास गुलशन और उसकी दासियाँ थीं। उसने अपनी दासियों को कमरे से बाहर जाने का इशारा किया। इसके बाद वह उठकर बैठ गई। गुलशन को उसने पास बिठलाकर कहा—"बहन, तुम शायद मेरी बेहोशी का कारण समझ गई होगी। अब तुम्हारे महल को छोड़ने का वक्त आ गया है, तुम रणवीर को साथ लेकर मेरे यहाँ आ जाओ।"

गुलशन चली गई। सितमआरा ने अपनी दासी को बुलाया। उसने दासी के वस्त्र माँग लिए। गुलशन रणवीर को साथ लेकर लौट आई। नाच-रंग उस समय जोरों के साथ हो

रहा था । रणबीर उसे सुनता था और मौन था । एक अज्ञात भावी दुर्घटना की चिंता उसके हृदय में एक प्रकार का भय उत्पन्न कर रही थी । रणवीर ने एक दासी के वस्त्र पहने और दूसरी के गुलशन ने ।

सितमआरा आगे थी, पीछे-पीछे रणवीर और गुलशन । रात्रि आधी से अधिक व्यतीत हो गई थी । चारों ओर घोर निस्तब्धता का निवास था । दरबान उस समय सो रहा था । सितमआरा की लौंडी ने द्वार खुलवाए । द्वार खुल गए ।

सितमआरा ने रणवीर का हाथ पकड़ लिया । उसने कहा—"देखो, तुम ख़ुदा पर यक़ीन करते हो । मैंने गुलशन को अपनी छोटी बहन नहीं अपनी लड़की की तरह प्यार किया है । गुलशन की ख़ुशी के लिये ही मैं इसको तुम्हें सौंप रही हूँ । लेकिन याद रखना, तुम इससे हरदम मुहब्बत करना, इसको आराम से रखना ।"

सितमआरा का कंठ रुँध गया, वह और अधिक न कह सकी । उसने एक थैली निकाली, वह थैली उसने रणवीर के हाथ में रख दी । उसने अपने मानसिक उद्‌गारों को दबाकर फिर कहना आरंभ किया—"यह लो, समझना मैं तुम्हें दहेज दे रही हूँ । तुम्हारे वास्ते यह बहुत दिनों के लिये काफ़ी होगा—जाओ ।" इतना कहकर सितमआरा तीर की भाँति वहाँ से चली गई । उसने गुलशन से मिलना तो दूर रहा, उसकी ओर देखा तक नहीं ।

रणवीर और गुलशन दोनो महल के बाहर निकले। गुलशन ने पूछा—"कहाँ चलोगे ?" रणवीर कह उठा—"नवाब वाजिदअली शाह के राज्य के बाहर।" दोनो ने कानपुर का मार्ग पकड़ा।

सितमआरा लौट आई। नाच-रंग उस समय भी जोरों के साथ हो रहा था। सितमआरा लेट गई। वह उस समय रो रही थी।

चौदहवाँ परिच्छेद

भवानीशंकर ने सरस्वती से उसको साथ ले चलने का वादा तो कर लिया था, पर इसका उसे दुःख था। कारण स्पष्ट थे। भवानीशंकर एक नवयुवक होते हुए भी स्वतंत्र न था। 'वह स्वतंत्र न था' इसके अर्थ यह नहीं हैं कि उसकी माता अथवा उसके चाचा का उस पर दबाव था, वरन् उस पर उसकी अंतरात्मा का दबाव था। अंतरात्मा का प्रभाव बड़ा कठिन होता है, और वह अनेक बार प्रयत्न करने पर ही मिट सकता है।

फिर भी भवानीशंकर ने सरस्वती को कानपुर ले चलने का निश्चय कर लिया। रात्रि उसने सरस्वती के साथ ही व्यतीत की। प्रातःकाल उसने सरस्वती के साथ कानपुर को प्रस्थान किया। लखनऊ छोड़ते समय सरस्वती ने एक ठंडी श्वास ली। इसके बाद वे गाड़ी पर बैठ गए। दोनो थोड़ी देर तक मौन रहे। इसके बाद सरस्वती ने अपना सिर उठाया। उसने कहा—"भवानी बाबू, इस पतन का अंतिम परिणाम क्या होगा?" भवानीशंकर सिहर उठा। उसे धर्म पर विश्वास था, उसे ईश्वर पर विश्वास था, उसे नरक पर विश्वास था, और साथ-साथ उसे नारकीय यंत्रणाओं पर भी विश्वास था।

भवानीशंकर का मुख पीला पड़ गया। उसने उत्तर न दिया। सरस्वती को शायद उत्तर पाने की आशा भी न थी, क्योंकि वह फिर अपने विचारों में मग्न हो गई थी।

थोड़ी देर बाद सरस्वती ने फिर पूछा—भवानी बाबू, एक बात का जवाब दोगे ?"

भवानीशंकर ने धीरे से कहा—"हाँ।"

सरस्वती ने काँपते हुए स्वर से पूछा—"भवानी बाबू, संसार में तुम सबसे अधिक किससे प्रेम करते हो ?"

भवानीशंकर स्वयं ही न जानता था कि वह संसार में सबसे अधिक किससे प्रेम करता था। फिर भी लोक-नीति के अनुसार उसने उत्तर दिया—"तुमसे !"

सरस्वती इस उत्तर पर मुस्किराई। उसने फिर पूछा—"भवानी बाबू, क्या तुम मेरे लिये सब कुछ छोड़ सकते हो ?"

यह प्रश्न टेढ़ा था। भवानीशंकर बड़े संकट में पड़ गया। सरस्वती के पीछे सब कुछ छोड़ सकना—यह असंभव था। उर्मिला का क्या होगा ? समाज क्या कहेगा ?

भवानीशंकर ने साहस करके कहा—"सरस्वती, मेरे सब कुछ छोड़ने से अगर तुम्हें कुछ लाभ हो, तो उसे छोड़ दूँ। जिस भाँति हम लोग आज तक रहे हैं, उसी प्रकार रहेंगे। अगर ऐसा न करेंगे, तो समाज क्या कहेगा ?"

सरस्वती की हँसी गाड़ी भर में गूँज उठी—भवानी बाबू, मैंने तुमसे कुछ छोड़ने को थोड़े ही कहा था, मैंने केवल यह

पूछा था कि क्या तुम ऐसा कर सकते हो ? अच्छा, इन बातों को जाने दो।" इतना कहते-कहते सरस्वती गंभीर हो गई। वह फिर सोचने लगी। उस समय उसकी आँखें बंद थीं।

भवानीशंकर ने सरस्वती के भावों में कुछ देखा, पर उसने क्या देखा, वह यह न समझ सका। उसने समझने की कोशिश की, पर वह असफल रहा। भवानीशंकर दर्शनिक न था, और न वह मनोविज्ञान का विद्यार्थी। वह मनुष्य के चरित्र को समझने में सदा असफल रहा।

गाड़ी तेजीके साथ चली जा रही थी। भवानीशंकर का हृदय धड़क रहा था। एक बार नरक से निकलकर वह फिर नरक में आ पड़ा था। इसी को पतन कहते थे। बुराइयों को जानते हुए भी बुराइयों को आलिंगन करना पड़ता है, यह मनुष्य की कमजोरी है। भवानीशंकर ने इस कमजोरी पर विजय पाने की बड़ी चेष्टा की, पर वह असफल रहा। और सरस्वती ?

सरस्वती सोई न थी। वह सोच रही थी। क्या सोच रही थी, यह बताना कठिन है; क्योंकि विचारों का स्रोत इतना प्रबल था कि उसमें किसी एक बात पर वह जम न सकती थी। शायद एक भाव उसके मस्तिष्क में उग्र रूप धारण करके चक्कर काट रहा था—"प्रतापसिंह क्या है। ?"

उसके पतन का कारण कौन था, प्रतापसिंह या भवानीशंकर ? प्रतापसिंह—नहीं भवानीशंकर ! भवानीशंकर ? नहीं

प्रतापसिंह ! उसकी समझ में कुछ भी न आया । अच्छा, तो वह किससे प्रेम करती थी ? भवानीशंकर से ! यह स्पष्ट था। तब फिर उसके पतन का कारण प्रतापसिंह ही हुआ। वह नर-पिशाच अपनी पैशाचिक शक्ति के साथ सरस्वती के सामने आया, और सरस्वती उसके वासना के समुद्र में डूब गई। यहीं उसका अंत हो गया। संसार में वह मुँह दिखाने के योग्य भी न रह गई । भवानीशंकर से वह प्रेम करती थी, उसमें पतन कैसा ? पर प्रतापसिंह—उससे तो वह प्रेम न करती थी। उसके पतन का कारण प्रतापसिंह ही था।

पर भवानीशंकर भी दोषी था। शायद प्रतापसिंह से अधिक था । प्रेम करके—उस भाव को प्रदर्शित करके जो पतन के निकट ही है, वह हट गया। परिणाम स्पष्ट था।

सरस्वती इन्हीं विचारों में मग्न थी। विचार दुःखप्रद होते हुए भी सरस्वती उन्हें अलग न कर सकती थी। एक-आध बार उसने मन में कहा भी—"जाने दो इन विचारों को," पर विचारों ने उस पर विजय पाई। वह उन्हें अलग न कर सकी।

सरस्वती एकाएक चौंक उठी। भवानीशंकर को उस समय नींद आने लगी थी । वह भी चौंककर उठ बैठा। सरस्वती ने कहा—"भवानी बाबू, हम कहाँ चल रहे हैं ?"

भवानीशंकर को इस प्रश्न पर आश्चर्य हुआ, फिर भी उसने प्रश्न के योग्य ही उत्तर दिया—"पतन की ओर !" सरस्वती हँस पड़ी।

उसने कहा—"क्या भवानी बाबू, हम लोग किसी प्रकार पतन की ओर जाने से बच सकते हैं ?"

भवानीशंकर ने भी हँसते हुए उत्तर दिया—"शायद आत्म-हत्या करने से ।" सरस्वती की हँसी लोप हो गई । वह गंभीर हो गई । शायद भवानीशंकर की बात उसे पसंद आ गई ।

भवानीशंकर सरस्वती की इस गंभीरता से डर गया । क्या उसने कोई ऐसी बात कह दी, जिससे उसको दुःख हुआ । उसने सरस्वती से पूछा—"सरस्वती, तुम एकाएक गंभीर क्यों हो गईं ?"

सरस्वती मुस्किराई । मुस्किराहट में एक प्रकार का रूखा-पन था । उसने कहा—"भवानी बाबू, तुम्हारी बात में यथेष्ट सार था, उसी पर मैं विचार कर रही थी ।"

भवानीशंकर और भी डर गया—"सरस्वती, मैंने जो कुछ कहा था, वह केवल मज़ाक़ में कहा था । उन बातों को भूल जाओ ।"

सरस्वती भवानीशंकर से लिपटकर बैठ गई । वह एकटक भवानीशंकर की ओर देखने लगी । सरस्वती उस समय प्रसन्न थी, शायद भवानीशंकर भी प्रसन्न था । बड़ी देर तक वह भवानीशंकर के साथ इस प्रकार बैठी रही । फिर उसने धीरे से कहा—भवानी बाबू, अब हम दोनो अंत तक साथ रहें, अब तुम मुझे न छोड़ना !"

भवानीशंकर भी उस समय उन्मत्त हो गया । उसने सरस्वती

से कहा—"हाँ, हम दोनो अब अंत तक साथ रहेंगे। चलो, हम दोनो साथ-साथ पतन की ओर बढ़ रहे हैं, परिणाम जो कुछ होगा, वह हो, अब मुझे उसकी कोई चिंता नहीं।"

सरस्वती की आँखों में आँसू भर आए। भवानीशंकर के मुख से ये उद्गार सुनकर वह प्रसन्नता से पुलकित हो गई, और भवानीशंकर के कंधे पर अपना सिर रखकर वह फूट-फूटकर रोने लगी, पर वह भवानीशंकर के उद्गारों की वास्तविकता नहीं समझ सकी। ऐसे अवसरों पर अंध-विश्वास बड़ा काम करता है। परिस्थितियों तथा वास्तविकता को देखना ऐसे समय पर असंभव हो जाया करता है।

फिर भी सरस्वती एक बात को न भूल सकी। प्रकाशचंद्र! सरस्वती समाज तथा धर्म द्वारा प्रकाशचंद्र से बाँध दी गई थी, और जीवन-भर के लिये बाँध दी गई थी। प्रकाशचंद्र को छोड़ना समाज तथा धर्म दोनों को छोड़ना था। समाज को वह छोड़ सकती थी, पर धर्म का छोड़ना? धर्म को तो वह पहले ही छोड़ चुकी थी। तृष्णा के प्रथम प्रहार के समय मनुष्य धर्म के प्रति अंधा हो जाता है, और फिर पतन के बाद जब तृष्णा के प्राबल्य में शिथिलता आ जाती है, उस समय धर्म भयानक रूप रखकर मनुष्य को डराने लगता है। सरस्वती का भी यही हाल था।

भवानीशंकर के न लौटने पर, उधर भवानीशंकर की माता तथा उर्मिला चिंतित थीं। उर्मिला जानती थी कि सरस्वती

लखनऊ में ही है। और वह यह भी जानती थी कि भवानी-शंकर वहीं गया होगा। मुंशी रामसहाय ने पता लगाया। जिस समय मुंशी रामसहाय प्रतापसिंह के घर पर पहुँचा, उसके एक घंटे-भर पहले ही भवानीशंकर और सरस्वती लखनऊ छोड़ चुके थे। मुंशी रामसहाय ने भवानीशंकर की माता को सूचना दी। सूचना उर्मिला को भी मिली। उर्मिला एकाएक काँप उठी थी। क्या वास्तव में भवानीशंकर उसे छोड़ गया—यह असंभव था। पर फिर भी यह निश्चय था कि भवानीशंकर विना उसे सूचना दिए सरस्वती के साथ चला गया था। उर्मिला ने माता से कानपुर लौट चलने का अनुरोध किया। माता ने उर्मिला की बात मान ली।

मुंशी रामसहाय ने उसी समय चलने की तैयारी कर ली। उर्मिला और भवानीशंकर की माता ने भी मुंशी रामसहाय के साथ कानपुर की ओर प्रस्थान किया। उर्मिला उस समय चिंतित थी।

पुत्र-वधू को चिंतित देखकर माता को कुछ शक हुआ। उसने पूछा—"बहू, मामला क्या है?" उर्मिला मुस्किराई, उसने कहा—"कुछ भी नहीं।"

पर संसार को देखे हुई अनुभव-युक्त माता से उस मुस्कि-राहट के अंदर छिपा हुआ करुणा तथा व्यंग्य का भाव छिपा न रह सका। उसने सिर हिलाते हुए कहा—"बहू, मुझसे बातें क्यों छिपाती हो? मैं सब समझती हूँ।"

मुंशी रामसहाय उस समय ऊँघ रहे थे। दिन-भर सफ़र करने पर जब उन्हें शराब न मिली, वह व्यग्र हो गए थे। सामने एक गाँव को देखकर मुंशीजी की जान में जान आई। गाड़ी रुकवा दी गई, मुंशीजी गाँव में शराब की तलाश में निकले। पर दुर्भाग्य-वश गाँव में उन्हें शराब न मिली। हाँ, एक भले-मानुस ने मुंशीजी से कहा—"साहब, इस गाँव में शराब आपको न मिलेगी। अगर ताड़ी चाहिए, तो धनुवा पासी के यहाँ मिल जायगी।" डूबते हुए को तिनके का सहारा काफ़ी। मुंशीजी लपककर धनुवा पासी के घर पहुँच ही तो गए। ताड़ी की एक कुञ्जी क्या, मानो उन्हें अमृत मिल गया। इसके बाद मुस्किराते हुए मुंशीजी गाड़ी पर लौट आए। आते ही उन्होंने कहा—"भौजी, ये लौंडे जो न करावें, सो थोड़ा है।"

गाड़ी में बैठकर, दम लेकर, मुंशीजी ने फिर कहा—"ज़माना बड़ा नाज़ुक है, जब मैं लड़का था, तब ऐसी बातें कभी सुनी तक न जाती थीं।"

भवानीशंकर की माता ने बड़े करुण स्वर में कहा—"लाला, जब तुम्हीं लोग भवानी को नहीं सँभालते, तो भला हम स्त्री क्या कर सकती हैं।"

लाला रामसहाय ने सिर हिलाते हुए कहा—"भौजी, लड़का हाथ से निकल गया। अब उसका सँभलना बड़ा मुश्किल है। मुझे क्या मालूम था कि वह इतनी थोड़ी उम्र में ही इतने गुल खिलाएगा।"

उसी स्वर में भवानीशंकर की माता ने उत्तर दिया—"लाला, अभी वह लड़का ही है। उसमें अभी समझ कहाँ है? समझ आने पर ख़ुद सँभल जायगा।"

मुंशी रामसहाय ने सिर हिलाते हुए धीरे से कहा—"मुमकिन है, लेकिन मुश्किल ही है।" इतना कहकर मुंशी रामसहाय फिर ऊँघने लगे।

उर्मिला उस समय रो रही थी। भगवान् को क्या यही दिखलाना था। उसके आराध्य देव ही जब उस पर रुष्ट हो गए, तो उसका जीवन ही संसार में व्यर्थ था। उसकी आँखें लाल थीं। भवानीशंकर की माता ने उसे समझाते हुए कहा—"बहू, रोती क्यों हो? यह तो दुनिया में होता ही रहता है। अरे, भवानी के बाबू ने न-जाने क्या-क्या किया, न-जाने कितना मुझे रुलाया, लेकिन समझ आने पर फिर सँभल गए।"

मुंशी रामसहाय उस समय ऊँघ रहे थे, पर वह एकाएक उठ बैठे—"हाँ भौजी, जवानी में तो यह हुआ ही करता है। भैया ने जो कुछ किया है, वह छिपा थोड़े ही है। मैं भी तो उनके साथ शरीक रहा हूँ..." पर मुंशीजी एकाएक रुक गए। उनका मुख लाल हो गया। पुत्र-वधू के सामने वह कैसी बात कर बैठे, इसी विचार से वह शरमा गए। वह फिर ऊँघने लगे।

दोनो गाड़ियाँ कानपुर की ओर चली जा रही थीं। भवानीशंकर यह न जानता था कि उर्मिला उसके पीछे-पीछे आ रही है और न सरस्वती को ही इसका ज्ञान था। भवानीशंकर और

सरस्वती, दोनों ही एक रंग में मस्त थे। किसी को भी उर्मिला का ध्यान न था। मुंशी रामसहाय ऊँघ तो रहे थे, पर वह बेर-बेर चौंक उठते थे। दो-एक बेर उन्होंने गाड़ीवाले से पूछा—"देखो, कोई गाड़ी तो सामने नहीं है?" गाड़ीवाला उस समय एक ग़ज़ल गाने में मस्त था, उसने मुंशी रामसहाय की बात सुनी तक नहीं। तीसरे दफ़े गाड़ीवान का उत्तर न पाकर मुंशी रामसहाय को क्रोध आ गया। ज़ोरों के साथ वह उठ खड़े हुए। लपककर उन्होंने गाड़ीवाले के एक हाथ मारा, फिर जूता निकालकर मुंशीजी ने आरंभ किया—"बहन....साले, बदमाश, उल्लू के पट्ठे। मैं इतना पुकारता रहा, तूने जवाब क्यों नहीं दिया?"

गाड़ीवाला भी ज़रा खरा आदमी था, इन बातों को वह सुनकर बोला—"बाबू साहब, तोह से हम कहे देत हैं कि तू अधिक बोला, तो हमौं मारब।"

मुंशीजी की क्रोधाग्नि भड़क उठी। वह फिर मारने को लपके। लेकिन बीच ही में गाड़ीवाले ने अपना चाबुक ताना, फिर क्या, मुंशीजी सीधे गाड़ी के अंदर दिखाई दिए। मुंशीजी का क्रोध शांत हो गया था। गाड़ी फिर चल दी।

भवानीशंकर गंगा के किनारे पहुँच गया। नाव खड़ी थी। उस समय रात्रि हो रही थी। मल्लाह किनारे पर न थे। भवानीशंकर मल्लाह को ढूँढ़ने निकला, फिर वह लौट आया। मल्लाह रात्रि के समय गंगा के पार उतारने को तैयार न थे।

भवानीशंकर अच्छा तैराक था, और साथ ही वह खेना भी अच्छा जानता था। उसने सरस्वती से कहा—"सरस्वती, मल्लाह तो कोई नहीं मिलता। कहो, तो मैं अकेले तुम्हें नाव पर ले चलूँ। यहाँ तुम क्या ठहरोगी ?"

सरस्वती ने मुस्किराते हुए कहा—"तुम्हारे साथ मुझे कहीं भी डर न लगेगा, चलो।"

भवानीशंकर नाव पर बैठ गया, और साथ में सरस्वती भी। भवानीशंकर ने डाँड़ उठा लिए। नाव खे दी गई। नाव आधी दूर पहुँची होगी कि भवानीशंकर ने सुना—"भवानीशंकर !" भवानीशंकर ने पीछे फिरकर देखा, तो मुंशी रामसहाय खड़े थे। और मुंशी रामसहाय के साथ उसकी माता और उर्मिला भी खड़ी थीं। सरस्वती ने भी यह देखा। वह एकाएक पीली पड़ गई। फिर वह मुस्किराई।

भवानीशंकर ने नाव मोड़ दी। सरस्वती ने कहा—"फिर कहाँ जाते हो ?"

भवानीशंकर ने कहा—"चाचा बुला रहे हैं।"

सरस्वती चुप होगई। उसने फिर कहा—"भवानी बाबू, तुमने कहा था कि हम अंत तक साथ रहेंगे। पर इन परिस्थितियों में यह असंभव मालूम होता है।" इतना कहकर वह खड़ी हो गई।

हलकी नाव सरस्वती के खड़े होने से डगमगाने लगी। भवानीशंकर ने कहा—"सरस्वती, बैठो, नहीं तो नाव डूब जायगी।"

सरस्वती हँस पड़ी। वह इतने ज़ोर से हँसी कि हँसी उर्मिला इत्यादि को भी सुनाई पड़ी। सरस्वती ने किनारे की ओर देखते हुए कहा—"भवानी बाबू को मुझसे छीनने आई हो उर्मिला! मुझसे उन्हें छीनोगी? देखूँ तो! हम दोनो अंत तक साथ रहेंगे!" सरस्वती उद्विग्न हो गई थी। एक किनारे से वह दूसरे किनारे भवानीशंकर के पास दौड़ी—नाव उलट गई।

सरस्वती ने भवानीशंकर को पकड़ लिया—"कहाँ जाओगे भवानी बाबू! हम-तुम, दोनो साथ मरेंगे!"

भवानीशंकर ने झटका देकर अपने को छुड़ा लिया। वह किनारे की ओर चलने लगा। सरस्वती ने पुकारकर कहा—"भवानी बाबू! तुम अपने वादे के कितने कच्चे निकले। क्या यही तुम्हारा प्रेम था, जाओ, सुख-पूर्वक रहो। मैंने तुम्हें तुम्हारे अपराधों के लिये क्षमा किया।"

सरस्वती एक दफ़े नीचे गई। वह फिर ऊपर उठी। उसने कहा—"मुझे बचाओ!" चीख़ चारों ओर गूँज उठी, और फिर वह सदा के लिये गंगा के अंक में समा गई!

भवानीशंकर किनारे लौट आया। किनारे लौटकर वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। लाला रामसहाय ने मल्लाह बुलवाए। भवानीशंकर को साथ लेकर वह उसी समय गंगा के पार उतर आए।

प्रकाशचंद्र को भवानीशंकर के आने की ख़बर मालूम हुई।

वह भवानीशंकर के यहाँ आया, उसने पूछा—"भवानीशंकर ! सरस्वती कहाँ है ?" भवानीशंकर मौन रहा। प्रकाशचंद्र ने फिर पूछा—"बोलो बाबू भवानीशंकर, सरस्वती कहाँ है ?" भवानीशंकर ने आकाश की ओर उँगली उठाई। प्रकाशचंद्र समझ गया। उसने एक प्रश्न और किया—"कैसे ?" मुंशी रामसहाय उस समय बाहर आ गए। उन्होंने उत्तर दिया—"गंगा में डूबकर !"

प्रकाशचंद्र सिर झुकाकर कुछ सोचने लगा। इसके बाद वह वैसे ही सिर झुकाए चला गया। इसके बाद प्रकाशचंद्र को फिर किसी ने कानपुर में नहीं देखा। यह सुना जाता है कि वह विद्याध्ययन के लिये विदेश चला गया, पर खबर कितनी ठीक है, यह हम नहीं कह सकते।

पंद्रहवाँ परिच्छेद

रणवीर और गुलशन, दोनो पतन की ओर चल दिए। किसी को भी भविष्य का ज्ञान न था। जिस समय वे महल के बाहर निकले, अर्ध-रात्रि व्यतीत हो चुकी थी। महल से कुछ थोड़ी दूर पर एक गाड़ी खड़ी थी—शायद सितमआरा ने उसका इंतज़ाम करवा दिया था। दोनो गाड़ी पर बैठ गए। गाड़ीवाले ने पूछा—"बाबूजी, कहाँ चलिएगा?" रणवीर ने उत्तर दिया—"कानपुर की तरफ़।"

थोड़ी देर तक दोनो बैठे रहे। इसके बाद रणवीर ने कहा—"सुभद्रा!" सुभद्रा ने सिर झुकाए हुए धीरे से उत्तर दिया—"नाथ!"

रणवीर चिंतित था। वह शीघ्र ही लखनऊ-राज्य की सीमा के बाहर हो जाना चाहता था। उसने गाड़ीवाले से कहा—"अगर सुबह होते-होते हमें कानपुर पहुँचा दो, तो तुम्हें एक मोहर इनाम में दी जायगी।"

गाड़ीवाले ने कहा—"यह तो ग़ैर मुमकिन है।" रणवीर ने फिर पूछा—"तुम्हारा घोड़ा कितने का है?"

घोड़ा गाड़ीवाले ने तीस रुपए का लिया था, पर इस वक्त उसने कहा—"हुज़ूर, मैंने तो इसको ढाई सौ रुपए का ख़रीदा

था, लेकिन अब इसके चार सौ लग रहे हैं, और मैं नहीं बेचने का।"

रणवीर ने गाड़ीवाले की बातें सुनकर मुस्किराया। उसने कहा—"अच्छा, इसे खूब तेज़ी के साथ ले चलो, मैं तुम्हें दो सौ रुपए दूँगा।"

गाड़ीवाले के मुँह में पानी भर आया। उसने गाड़ी तेज़ कर दी। गाड़ी इतनी हिलती-जुलती थी कि सुभद्रा रणवीर पर गिर पड़ी, रणवीर ने उसे हृदय से लगा लिया।

दोनो चिंतित थे। वे शीघ्र ही लखनऊ-राज्य की सीमा से बाहर निकल जाना चाहते थे। समय उनके पास यथेष्ट था। फिर भी शीघ्रता की आवश्यकता थी। गाड़ी बीस मील तीन घंटे में निकल गई। एकाएक गाड़ी बड़े ज़ोर से हिली, और इसके बाद गिर पड़ी। रणवीर तथा सुभद्रा, दोनो के शरीर छिल गए। रणवीर बाहर निकला। उसने देखा कि घोड़ा ज़मीन पर पड़ा था, और उसके रक्त निकल रहा था।

गाड़ीवाला भी थोड़ी दूर पर मूर्च्छितावस्था में पड़ा था। रणवीर पानी छिड़ककर गाड़ीवाले को होश में लाया, पर घोड़ा मर चुका था, गाड़ी चूर-चूर हो गई थी। गाड़ीवाले को रणवीर ने उसी समय दो सौ रुपए दिए, और कहा—"तुम जा सकते हो।"

गाड़ीवाले ने रुपए की थैली देखी, और फिर उसने रणवीर पर एक दृष्टि डाली। सुभद्रा उस दृष्टि से भयभीत हो गई।

वह चीख़ उठी, और गिरना ही चाहती थी कि रणवीर ने उसे थाम लिया। गाड़ीवाले ने धीरे से कहा—"और बाबू साहब, गाड़ी के दाम ?" उस समय गाड़ीवाले का मुख भयानक हो गया था ।

रणवीर ने शांत भाव से उत्तर दिया—"मैंने तुम्हें दोनो के दाम दे दिए हैं ।"

गाड़ीवाले ने बड़ी गंभीरता से कहा—"बाबू साहब, गाड़ी के दाम दो सौ रुपए हुए, वह तो देने ही पड़ेंगे ।"

रणवीर मुस्किराया—"और अगर मैं न दूँ ।"

गाड़ीवाले ने कर्कश स्वर में कहा—"बाबू साहब, मैं ज़बर-दस्ती आपसे ले लूँगा ।"

रणवीर का मुख गंभीर हो गया । कुछ देर तक मौन रह-कर उसने कहा—"अच्छा, तो देखूँ, तुम कैसे लिए लेते हो ।"

गाड़ीवाला रणवीर की ओर झपटा, रणवीर तैयार था । वह एक ओर हट गया । प्रहार के वेग से वह स्वयं ही ज़मीन पर गिर पड़ा, पर एकदम उठकर वह फिर झपटा ।

सुभद्रा दूसरा प्रहार होते ही चीख़ उठी । रणवीर ने उसकी ओर देखा । इसी बीच में गाड़ीवाले ने रणवीर को पकड़ लिया । रणवीर जब तक सँभले-सँभले, गाड़ीवाले ने उसे पृथ्वी पर पटक दिया, और उसकी छाती पर चढ़ बैठा । उसने एक चमकता हुआ छुरा निकाला ।

रणवीर मौन पड़ा रहा । गाड़ीवाले ने छुरे से प्रहार किया ।

रणवीर ने गाड़ीवाले की कलाई पकड़ ली। उसने उसकी कलाई इतने ज़ोर से दबाई कि गाड़ीवाला चिल्ला उठा। छुरा उसके हाथ से छूट पड़ा। एक झटका देकर रणवीर उठ खड़ा हुआ। इस बार उसने गाड़ीवाले के दोनो हाथ ज़ोरों से पकड़ लिए। सुभद्रा से उसने कहा—"देखो, गाड़ी में रस्सी है?"

गाड़ी में पानी भरने की एक डोर पड़ी थी। रणवीर ने सुभद्रा से उसे चौहरी करवाया। इसके बाद उसने गाड़ीवाले को एक पेड़ के तने से बाँध दिया। फिर दोनो पैदल ही कानपुर की ओर बढ़े।

सुबह हो गई थी, और रात-भर न सोने के कारण दोनो काफ़ी थक गए थे। एक गाँव में पहुँचकर एक बैल-गाड़ी की गई। दोनो बैल-गाड़ी पर बैठकर आगे बढ़े। रणवीर की चिंता और अधिक बढ़ गई।

थकी होने के कारण सुभद्रा को नींद आ गई। रणवीर की जाँघ पर अपना सिर रखकर वह सो गई। बैल-गाड़ी अपनी चाल से चलने लगी।

× × ×

नवाब वाजिदअली शाह ने महल-भर ढुँढ़वा डाला, पर गुलशन का पता न था। चारों ओर आदमी भेज दिए गए। प्रतापसिंह भी साथ-साथ रणवीर की तलाश में निकला।

प्रतापसिंह चला, कहाँ? रणवीर के पीछे, क्यों? उसको पकड़कर दंड दिलवाने! वह स्वयं ही हँस पड़ा।

अपने ही पुत्र को दंड दिलवाना—और फिर दंड कैसा! प्रतापसिंह ने ही रणवीर को धोखा दिया, असल में इन सब घटनाओं का कारण प्रतापसिंह ही था। अपने पुत्र को दंड दिलवाना, यह प्रतापसिंह के लिये असंभव था।

पहला प्रश्न जो प्रतापसिंह के हृदय में हुआ, यह था—"रणवीर कहाँ गया? शायद कानपुर की ओर—और शायद......अंत की ओर।"

प्रतापसिंह को विश्वास था कि रणवीर उस समय तक लखनऊ की सरहद पार कर गया होगा, पर इसका क्या निश्चय? अगर रास्ते में लोगों को शक हुआ? अगर रास्ते में गाड़ी टूट गई? ऐसी अनेक घटनाएँ हो सकती थीं, जो रणवीर के मार्ग में बाधाएँ उपस्थित कर सकती थीं।

जिस समय प्रतापसिंह यह सोच रहा था, उस समय राज्य की ओर से घुड़सवार चारों ओर प्रस्थान कर रहे थे। प्रताप-सिंह ने देखा कि देर हो रही है, उसने भी कानपुर का मार्ग पकड़ा।

कानपुर लखनऊ से अधिक दूर पर नहीं है, केवल ४८ मील का रास्ता है। सवार तेज़ी से आगे बढ़े। प्रतापसिंह ने भी तेज़ी की। वह रणवीर को बचाकर उसको दंड देना चाहता था। रणवीर कृतज्ञता से उसको 'भाई साहब' कहकर संबोधित करेगा, और प्रतापसिंह अपने दुष्कर्मों के लिये उससे क्षमा माँगेगा। रणवीर उसको क्षमा कर देगा।

विचार सुंदर थे, पर भविष्य उसके विपरीत था । प्रताप-सिंह भविष्य के प्रति अंधा था ।

प्रतापसिंह आगे बढ़ा । एकाएक उसने अपने साथ तेज़ी से दौड़ती हुई एक छाया देखी । छाया ने पुकारा – "प्रताप-सिंह !" स्वर परिचित-सा था । प्रतापसिंह ने सिर फेरा । छाया ने फिर कहा—"तुम्हारा अंत आ गया !" प्रतापसिंह काँप उठा । छाया लोप हो गई ।

प्रतापसिंह ने यह समझने की लाख चेष्टा की कि उसको भ्रम हुआ, पर वह अपने को समझा न सका । वह धीरे-धीरे उन सवारों के साथ पहुँच गया, जो रणवीर को ढूँढ़ने निकले थे ।

उस समय वे गंगा से प्रायः एक मील की दूरी पर थे । प्रतापसिंह ने एक बैल-गाड़ी धीरे-धीरे बढ़ते हुए देखी—वह चौंक उठा । रणवीर गाड़ी पर बैठा था, सुभद्रा सो रही थी । प्रतापसिंह ने कड़ककर सवारों से कहा—"रुक जाओ ।" सवार रुक गए ।

प्रतापसिंह ने फिर कहा—"तुम लोग लखनऊ लौट जाओ ।" सवार प्रतापसिंह की शक्ति जानते थे—वे घूम गए । पर दो-एक को उसकी शक्ति पर विश्वास न था, वे सामने आ गए । उन्होंने कहा—"हम नहीं जाते । बैल-गाड़ी सामने है, हम लोग उसे ज़रूर पकड़ेंगे ।"

सवार जल्दी में थे; क्योंकि बैल-गाड़ी प्रायः घाट पर पहुँच

चुकी थी। प्रतापसिंह ने उन पर अपनी आँखें गड़ा दीं, पर परिणाम कुछ न हुआ। सवार आगे बढ़े। प्रतापसिंह ने अपनी तलवार खींच ली। वह तलवार चलाने में निपुण था, उसने उन दोनो सवारों को गिरा दिया। इसके बाद वह शीघ्रता से आगे बढ़ा।

बैल-गाड़ी किनारे पहुँच गई थी। रणवीर सुभद्रा के साथ उतरा। उसने बैल-गाड़ीवाले को किराया देकर एक हलकी नाव खोली।

दोनो नाव पर बैठ गए। उसी समय प्रतापसिंह भी वहाँ पहुँच गया, और नाव पर बैठ गया। नाव खुली थी, वह बढ़ी।

प्रतापसिंह रणवीर से अपने हृदय के भाव कहना चाहता था, पर उसके पास शब्द न थे। दो सवारों से लड़कर वह थक गया था, इसलिये वह बैठकर सुस्ताने लगा।

रणवीर प्रतापसिंह को देखकर काँप उठा, और सुभद्रा पीली पड़ गई, पर बोला कोई कुछ नहीं। रणवीर ने सोचा—"यहाँ तक अपनी निधि को ले आया हूँ, पर प्रतापसिंह ने पीछा नहीं छोड़ा। वह अब भी मेरे पीछे है।" इतना सोचते-सोचते उसके मुख के भाव कर्कश हो गए, पुरानी पाशविक वृत्ति फिर जाग उठी। वह धीरे से उठा। उस समय प्रताप-सिंह एक निर्जीव मनुष्य की भाँति आँखें बंद किए बैठा था। रणवीर प्रतापसिंह के पास गया। प्रतापसिंह ने आँखें बंद

किए हुए कहा—"कौन, रणवीर ?" रणवीर ने अपना छुरा निकालते हुए कहा—"हाँ भाई साहब !" इतना कहकर उसने छुरा प्रतापसिंह की कोख में घुसेड़ दिया।

प्रतापसिंह उठ खड़ा हुआ। उसने अपनी आँखें खोल दीं—"यह क्या ?" उसने आरंभ किया—"अपने प्राण बचानेवाले को ही तूने मारा !" वह दर्द से कराहने लगा—"लेकिन रणवीर, तुमने अपने पिता को मारकर बुरा किया, फिर भी मैं तुमको क्षमा करता हूँ।" प्रतापसिंह चुप हो गया। एक छाया प्रतापसिंह के सामने आई। प्रतापसिंह ने सुना—"प्रतापसिंह !" छाया सामने से लोप हो गई। प्रतापसिंह गरज उठा—"रणवीर ! तैयार हो जाओ। तुम और तुम्हारी प्रेमिका, दोनो ही मरेंगे।" इतना कहकर वह जल में कूद गया। उस समय प्रतापसिंह में अमानुषिक बल आ गया था। कूदकर उसने नाव उलट दी—तीनो पानी के अंदर पहुँच गए।

× × ×

कुछ लोगों ने बाद में देखा कि पानी में तीन शव उतरा रहे थे। रणवीर और सुभद्रा, दोनो हाथ जोड़े हुए बह रहे थे, और दोनो के बीच में अड़ा हुआ प्रतापसिंह का भी शव था, मानो मृत्यु के बाद भी वह रणवीर और सुभद्रा के मिलन में बाधा-रूप में उपस्थित था।